मकड़ी के जाले

[१७ मौलिक कहानियों का संग्रह]

लेखक

राजेन्द्रप्रसाद अवस्थी 'तृषित'

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

बनारस

प्रकाशक
ओमप्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी
बनारस।

प्रथम संस्करण—जनवरी १९५६
मूल्य: सवा दो रुपये

मुद्रक
नया संसार प्रेस
भदैनी, बनारस–१

पूज्य पिता जी के श्री चरणों में
सादर समर्पित

—रज्जू

विषय-सूची

अपनी बात

अपनी कहानियों का पहिला संग्रह पाठकों को सौंपते हुए मुझे हर्ष और संकोच हो रहा है। अपनी फुटकर कहानियोंको शृंखला-बद्ध पुस्तक के रूप में देखकर हर्ष होना स्वाभाविक है, संकोच इसलिए कि ये कहानियाँ सहृदय पाठकों को रुचती हैं या नहीं। जैसा कुछ बन पड़ा है पाठकों के हाथ में है और वे ही वास्तविक निर्णायक हैं।

मैंने कब से और कैसे कहानियां लिखना प्रारम्भ किया, यह लिख देना यहां अप्रासंगिक न होगा। मैं वास्तव में कवि था और अपना साहित्यिक जीवन मैंने कविता से ही प्रारम्भ किया। सन् ४२ की बात है। उस समय मैं सातवीं अंग्रेजी में मण्डला के जग-न्नाथ हाई स्कूल में पढ़ता था। उसी समय बंगाल मे अकाल फैला और अंग्रेज सरकार के गोदामों में अनाज सड़ता रहा, पर वहां की जनता को भूख-प्यास से व्याकुल कुत्ते की मौत मरना पड़ा। इस अमानुषिक घटना से भारतवर्ष के हर नागरिक को दुःख होना स्वाभाविक था। इसी प्रसंग को लेकर मैंने 'कलकत्ते का अकाल' कविता लिखी थी जो बाद में जबलपुर के साप्ताहिक 'पौरुष' (अब बन्द हो चुका है) में छपी थी। कविता पाठकों ने पसन्द की। अपने साहित्यिक जीवन का आरम्भ मैं इसी कविता से मानता हूँ। यद्यपि इसके पूर्व भी कई तुकबन्दियां कर चुका था।

सन् ४६ तक बराबर कविता लिखता रहा और वे सामयिक पत्रों में छपती भी रहीं। सन् ४६ के जनवरी महीने में मैंने एक पत्रिका में कहानी पुरस्कार की घोषणा पढ़ी और तब से कहीं कहानी लिखने की इच्छा जागृत हुयी। इसके पहिले आठवीं कक्षा में मैंने एक कहानी लिखी थी परन्तु गुरुजी ने उसे बिलकुल रद्दी करार कर दिया था। कहानी की उधेड़-बुन में मैं कई दिनों तक लगा रहा। कहानियां पढ़ीं, पर कोई प्लाट नजर न आया।

एक रविवार को मैं आराम से घर में बैठा था। एक लड़की काली का वेश रखे, हाथ में त्रिशूल लिये आ धमकी—"देवी तुमसे दान चाहती है।" मैं इस कलियुगी देवी को कुछ देर देखता रहा, उसकी मुद्राओं को देखता रहा और अन्त में मन ने कुछ दान देने की इजाजत न दी तो देवी ने बड़ा प्रकोप दिखाया—"जा तेरा सत्यानाश हो जायगा। देवी का कोप नहीं देखा ?" हिन्दू-धर्म में चल रहे इन थोथे धार्मिक विश्वासों के प्रति मेरा मन विद्रोह कर उठा और यही विद्रोह एक कहानी के रूप में उतरा, कहानी का शीर्षक था 'उलझन'। लिखकर कहानी को मैंने पढ़ा, मन भर गया और नकल कर पुरस्कार में उसे भेज दिया। सम्भवतः यह देवी के श्राप का (श्राप ही कहिए) ही कारण था कि इस कहानी पर मुझे प्रथम पुरस्कार (ज्योत्स्ना देवी पुरस्कार) मिला। उसके बाद मैंने दूसरी कहानी लिखी। मैं इसे अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ कि दूसरी कहानी भी खाली नहीं लौटी और 'सुमित्रा-पुरस्कार'' लेकर आयी। बस, यही मेरे साहित्यिक-जीवन में बड़ा मोड़ आया।

कविता धीरे-धीरे सोने लगी और कहानी तथा लेखों की ओर तेजी से अग्रसर हुआ। अब तो कदाचित् कवि नाममात्र को रह गया हूँ, कभी भूले भटके कोई कविता लिख जाती है।

'उलझन' से लेकर अब तक मैंने दो ढाई दर्जन कहानियां लिखी हैं जो सभी मासिक साप्ताहिक पत्रों में छप चुकी हैं। इन्हीं में से कुछ कहानियां प्रस्तुत संग्रह में संग्रहीत हैं। पहिली कहानी 'मकड़ी के जाले' ही अन्य सभी कहानियों में सर्वोपरि इसलिए है कि उसमें मकड़ी ने जो ताने-बाने उलझाये हैं वे उसी कहानी में समाप्त नहीं हो गये अपितु काफी आगे तक बढ़े हैं। इस संग्रह की प्रायः हर कहानी किसी न किसी समस्या के जाले में उलझी मिलेगी। बस, कहानियों के सम्बन्ध में इतना स्पष्टीकरण ही काफी होगा। उनके निर्णय का अधिकार तो पाठकों पर होता है। यदि पाठकों ने इनके प्रति मोह प्रकट किया तो सम्भवतः मैं शीघ्र ही उनके सामने दूसरा संग्रह रख सकूंगा।

इस पुस्तक के इतने शीघ्र और इतने अच्छे रूप में प्रकाशित होने का श्रेय सुप्रसिद्ध साहित्यिक आदरणीय सुधाकर जी पाण्डेय और हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस के व्यवस्थापक श्रीकृष्णचन्द्र बेरी जी को है, जिन्होंने पाठ्य पुस्तकों आदि व्यावसायिक रूप से अधिक लाभप्रद प्रकाशनों में व्यस्त रहने के बावजूद भी मेरे संग्रह का प्रकाशन किया। इसके लिये मैं गुरुवर पाण्डेय जी और भाई बेरी जी दोनों का हृदय से आभारी हूँ। पुस्तक की पाण्डुलिपि मेरी पत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी ने तैयार की थी उसके लिए क्या

लिखूँ वस्तु तो उसी की है और वही कई कहानियों की प्रेरणा रही है।

अन्त में 'कृष्णायन' के महाकवि पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र का उल्लेख करना चाहूँगा। मुझ पर पण्डित जी का बड़ा स्नेह रहा है और आज भी उनकी स्नेह छाया में मुझे शान्ति मिलती है। इस पुस्तक में ऐसे हितचिन्तक का 'आशीर्वाद' मेरे लिए एक वरदान ही सिद्ध होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

'तृषित निवास'
धरमपेठ, नागपुर
सितम्बर ५५

—राजेन्द्रप्रसाद अवस्थी

दो शब्द

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में सत्रह कहानियाँ हैं। कहानियों के प्रमुख पात्र निम्न अथवा मध्यम श्रेणी के व्यक्ति हैं। अपने पात्रों को ढूँढ़ने में लेखक को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा है। रास्ता चलते किसी चौराहे पर, किसी सिनेमा-घर के सामने, दफ्तरों को जाती सड़क पर या दफ्तर के अन्दर, देहात की टेढ़ी मेढ़ी और सकरी पगडंडी अथवा शहर की सपाट सड़कों पर कहीं लेखक को अपना चरित्र-नायक खड़ा मिल गया है। इससे कहानियों में आप ही आप सरलता और स्वाभाविकता आ गयी है। सभी कहानियाँ किसी विशिष्ट समस्या को लेकर लिखी गयी हैं। उनकी पृष्ठभूमि में हमारा शोषित तथा पीड़ित समाज है। फिर भी लेखक सतर्क रहा है। उसने अपनी कला को नग्न नहीं होने दिया। इसीलिए इन कहानियों को हम समस्यामूलक, सामाजिक, यथार्थोन्मुख, आदर्शवादी कहानियाँ कह सकते हैं।

संग्रह की पहिली कहानी 'मकड़ी के जाले' है। सन् १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में त्याग करनेवाला एक ऐसा युवक उसका नायक है जिसे हमने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एकदम भुला दिया है और जो अभाव तथा बेबसी की जिन्दगी बिता रहा है। उसी कहानी में एक ऐसा व्यक्ति भी है जो कभी कट्टर अंग्रेज-परस्त था (जिसे उस युग में हम ठेठ भाषा में देशद्रोही कहा

करते थे) परन्तु जो आज हमारे शासक वर्ग का एक अंग हो गया है। इसी कहानी का स्वाभाविक अंत उस समाजवादी व्यवस्था का प्रादुर्भाव है जो उस मकड़ी के जाले को छिन्न-भिन्न कर देती है जो शोषकों का बुना हुआ ताना-बाना है। 'रिक्शे-वाला' में यदि एक रिक्शा खींचनेवाले के जीवन और मनोविज्ञान का चित्रण है तो 'भाग्यरेखा' दफ्तर के एक 'बाबू' की कहानी है। जीवन से निराश यह प्राणी अपनी परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिए ज्योतिषी की बातों में आकर अपना रहा-सहा सहारा भी छोड़ देता है। 'दफ्तर की लड़की' में नारी की विवशता का स्वाभाविक चित्रण है। हिन्दी-साहित्य में इस समय प्रेम के नाम पर वासना को उभाड़ने वाली अश्लील कहानियों की बाढ़ आ गयी है। इन कहानियों के विरुद्ध 'खूनी कौन ?' एक मोर्चा है। वह ऐसे गन्दे साहित्य से सचेत कर हमें एक स्वस्थ-जगत की ओर ले जाती है। 'कला की साधना' एक कलाकार और उसकी साधना की निराशाजनक परिस्थितियों से हमें परिचित कराती है। 'अनारकली' और 'सुन्दरता का अन्त' दो ऐतिहासिक कहानियां हैं जिनमें लेखक ने विकृत इतिहास में से सत्य को खोज निकालने का प्रयत्न किया है। 'ग्राम-देवता' में एक अबोध बालिका की अनजान अभ्यर्थना और उसके सुपरि-णामों का विवेचन है। 'भोला' हमारी विकृत समाज-व्यवस्था का शिकार है, जिसे समाज ने ठुकराकर भी चैन की सांस न ली और जब वह चल बसा तभी उसे राहत मिली।

इस संग्रह की प्रत्येक कहानी पढ़ चुकने के बाद उसके सम्बन्ध में कुछ सोचने के लिए हमें विवश होना पड़ता है। मैं समझता हूँ कि कथाकार की यही सबसे बड़ी सफलता है। यह लेखक का पहिला कहानी-संग्रह है। मैं आशा करता हूँ कि उनकी कला उत्तरोत्तर निखरती जावेगी, भाषा मँजती जावेगी और वे अन्त तक 'तृषित' ही बने रहेंगे, क्योंकि तृप्ति अनुभव करते ही प्रगति का अन्त हो जाता है।

—द्वारकाप्रसाद मिश्र

मकड़ी के जाले

मकड़ी के जाले



बरसात का मौसम है।

जोर से वर्षा हो रही है। काली, भयानक काली रात है। रह-रह कर बिजली चमक उठती है और उसकी गहरी चमक मेरे दर्वाजों से अंदर आकर मुझे चौंका देती है। बीच बीच में मेघों की गड़गड़ाहट और सरसराती हुई शीतल हवा शरीर के तार तार कँपा देती है। कमरे के दर्वाजे और खिड़कियाँ खुली हैं। उन्हें बन्द भी नहीं किया जाता, जाने क्यों, न तो नींद ही आती और न उठने की इच्छा होती। सामने टँगी घड़ी का काँटा तेजी से बढ़ता आ रहा है। टन्-टन् अभी तो आठ बजे थे, बात की बात में ९ बजे और अब १० बज गए। मैंने सिर से रजाई ओढ़ ली। नींद आ जाये, सुबह जल्दी

उठना है परन्तु हाथ रजाई से मुँह नहीं ढकने देते । मन भीतर ही भीतर बड़ा अशांत है, जैसे मौसम का साथ दे रहा हो । बिजली की चमक की तरह एकदम चमका देनेवाली विचार-शृंखलायें पल भर के लिए आन्दोलन सा मचा देती हैं, मानो रह रह कर कोई तूफान सा उठता हो या ज्वारभाटे का एक अनोखा मिश्रण सा चल रहा हो ।

ओफ ! लो फिर एक तेज झोंका आया । दीवार पर टँगी तसवीरें नाच उठीं और सहसा मैंने देखा कि एक तस्वीर उड़कर मेरे सीने पर आ गिरी । मुझे लगा जैसे बाज़ की तरह कोई चीज़ टूट पड़ी हो । पास रखी बत्ती को मैंने बढ़ाया, और प्रकाश में देखा, वह तो महात्मा गांधी की तस्वीर थी—एक परिचित मुद्रा में ! हवा के निर्दय झोंकों ने पानी की दो चार बूँदें उस पर बिखेर दी थीं । मुझे लगा मानो गांधी की आत्मा रो रही है । मैं अपलक उस मूर्ति की ओर देखता रहा और तभी जाने कितनी घटनायें मकड़ी के जाले की तरह अपना ताना-बाना बुनने लगीं । उस जाले के बीच मुझे दो चेहरे नजर आने लगे । मैं विस्फारित नेत्रों से उस ओर देखने लगा, मानो उन चेहरों के परिचय की थाह लगाना चाहता हूँ । तभी सारी विस्मृत घटनायें जो स्मृति के आवरण में कुहासे की तरह छाई थीं, एकदम मोती सी झलकने लगीं ।

× × ×

हाँ, यह चेहरा, ओफ ! यह तो नगर सेठ धनपत राय का है । स्वतंत्रता मिले ७ वर्ष हो गए परन्तु उसे पाने के लिए कितनों की बलि देनी पड़ी थी । सन् ४२ का आन्दोलन, बंगाल का अकाल, बिहार का विद्रोह और जाने क्या-क्या नहीं हुआ । स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर कितने सपूतों ने अपने प्राणों की बाजी नहीं लगाई ? कितनों ने फिरङ्गी-सरकार की गोली का निशाना बनकर अपने निर्मम प्राणों का होम नहीं किया । यह तो एक सौदा था जिसमें हजारों बन गए,

हजारों बरबाद हो गए और हजारों न बने और न मिटे परन्तु स्वतन्त्रता का स्वप्न देखते-देखते अतृप्त अभिलाषा लिए चले गए ! कितनों के अरमानों की होली बाजार के बीच नहीं जली और इसके जलानेवाले थे हमारे देश के हमारे ही लोग, आज जिनकी गिनती बनानेवालों में ही करनी पड़ती है और सेठ धनपतराय का नाम स्वाभाविक रूप से हमारे सामने आ जाता है। मुझे याद है उस जमाने में धनपतराय बढ़िया मलमल का कुर्ता और फिनले की दूध सी धुली धोती पहिना करते थे, सिर पर काली टोपी लगाते और अंग्रेजों के महान भक्त बने फिरते थे। अंग्रेज अफसरों के स्वागत में उन्होंने हजारों रुपये खर्च किए, परन्तु देश के भूखे मरनेवाले भिखमंगों के लिए एक दाना भी न निकला। देश की आज़ादी चाहनेवालों के तो वे कट्टर शत्रु थे। एक-एक बागी का पता लगाने में सेठ धनपतराय उतने ही निपुण थे जितने व्यापार में एक-एक पैसा कमाने में। कितने नौजवानों का पता लगा-कर उन्होंने गिरफ्तारियाँ नहीं कराईं। इसी से अंग्रेज अफसरों को उन पर पूरा भरोसा था। प्रायः अंग्रेज अफसरों की भीड़ उनके यहाँ लगी रहती। इससे सेठजी को बड़ा अभिमान होता। कोसों मील दूर के फिरङ्गी उनके दर्वाजे पर आयें, महानता की इससे बड़ी और कौन सी निशानी हो सकती है। घर में भी सेठजी अंग्रेज-भक्ति दिखाने में कभी पीछे न हटते। अंग्रेजों के विरुद्ध यदि किसी ने घर में जरा भी मुँह खोला कि फिर उसकी खैर नहीं। इसी से घर में कोई कुछ कहने का भी साहस न करता, परन्तु सेठ धनपतराय के सबसे छोटे लड़के से यह न देखा गया। वह कॉलेज का छात्र था। स्वतंत्रता की पुकार उसकी नस-नस में गूँज रही थी। उसने सेठजी की एक न मानी, इसका परिणाम यह हुआ कि उसे घर से निर्वासित कर दिया गया और पुलिस को सूचना देकर उसे अपने ही हाथों जेल के

सीकचों में बन्द करवा दिया ताकि उसकी अक्ल अधिक देर यहाँ-वहाँ न भटकने पाये। इसके बदले पी० डब्ल्यू० डी० और आबकारी के ठेके सेठजी को मिल गए। और मिलते भी किसको—सैयां भये कोतवाल, डर काहे का! मानो सेठजी फिरङ्गियों के शत-प्रतिशत कारिन्दे हों। उनकी असल कमाई इसी जमाने की है, यह तीन मञ्जिला ऊँची आलीशान इमारत आज भी उस युग की गाथा गाती है।

कन्ट्रोल का समय था। बड़े-बड़े लोगों को राशन के लिए एक लम्बी 'क्यू-लाइन' बनाकर खड़े रहना पड़ता। शक्कर, तेल और कपड़ा सबके लिए परमिट खुल गए। इन परमिट की दुकानों में कुछ दुकानें सेठजी को भी मिलीं। बस, फिर क्या था, सैकड़ों बोरे शक्कर और कई थान कपड़ा घण्टे भर में खतम हो गया। जनता रोती-चिल्लाती रही पर उसकी फरियाद पत्थरों से टकराकर लौट आती। वही शक्कर तीन रुपया सेर, तेल २१) पीपा और १) गज का कपड़ा ५) गज पीछे के दर्वाजों से बेचा जाता। धीरे धीरे उनकी ये हरकतें लोगों को मालूम हो गईं और उन्हें 'चार सौ बीस' के नाम से पुकारा जाने लगा। परन्तु इससे सेठजी के कानों में जूँ तक न रेंगी। चार सौ बीस होंगे कहनेवाले और एक अजीब अहम्-भरी मुस्कान उनके मुँह पर खेलती रहती। कहते हैं 'वार-टाइम' के पहिले सेठजी एक छोटा सा ठेला लगाकर सड़कों पर घूमा करते थे। मुश्किल से १००—५० कमाकर जिन्दगी चलाते थे, परन्तु सच है कि भगवान् छप्पर फाड़कर देता है और इन फिरङ्गी देवताओं ने सेठ धनपतराय को नगर का सबसे धनवान् व्यक्ति बना दिया।

समय की गति विचित्र है, वह तो चक्र की तरह बदलता जाता है। १५ अगस्त को देश में आज़ादी मिली और अपने देश में अपना राज्य हो गया। फिरङ्गी देश छोड़कर चले गए, 'जैसी बहै बयारि पीठि

सुनि तैसी दीजे'—यह मंत्र सेठजी को अच्छी तरह मालूम है, तभी तो सेठजी में एक अजब परिवर्तन हो गया। फिनले की धोती और मलमल के कुर्ते का स्थान शुद्ध खद्दर की धोती और खद्दर के भगवे रंग के कुर्ते ने ले लिया। काली गोल टोपी न जाने कहाँ उड़ गई और खादी की श्वेत टोपी नजर आने लगी। लोगों को सेठजी में यह परिवर्तन देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

अब सेठजी देशसेवा और देश-कल्याण की बड़ी बड़ी बातें करने लगे। स्वतंत्रता का कैसा उपयोग करना चाहिए—यह भी समझाने लगे। अपने लड़के को, जिसे सेठजी ने जेल के कठोर सीकचों में बन्द करवाया था, अपने कलेजे से लगाने लगे। यदा-कदा जेल जानेवालों में उनका नाम लिया जाने लगा। उन्होंने आसाम रिलीफ फंड में पाँच हजार और गाँधी-मेमोरियल-फंड में तीन हजार रुपये दान दिए। अब तो उनकी गिनती नगर के श्रेष्ठ नेताओं में होने लगी। बड़े-बड़े अफसर उनकी मरजी के विरुद्ध जाने का साहस तक न करते।

समय चलता गया और आखिर वह दिन भी भारतवर्ष को देखने को मिला जब यहाँ की ३५ करोड़ जनता को अपना प्रतिनिधि आप चुनने का अधिकार प्राप्त हुआ। तब लोगों ने आश्चर्य से देखा कि सेठजी को कांग्रेस टिकट मिल गया है। सेठजी ने चुनाव में पैसा पानी की तरह बहाया और देश के करोड़ों अशिक्षित लोगों को अपनी बहु-मूल्य सेवाओं की सूची देकर चुनाव भी जीत लिया। अब उनके त्याग और तपस्या की चर्चायें चलने लगीं। असल भेद जाननेवाले भी अपना मुँह न खोल सके।

बादल कड़-कड़ा उठे और पानी की फुहार तेज होकर कटार की धार-सी गिरने लगी। मैंने करवट बदली और तभी एक लम्बी साँस आपसे आप निकल पड़ी—'समरथ को नहिं दोष गुसाईं'।'

× × ×

मकड़ी के जाले

घड़ी के काँटोंने कट्ट की आवाज की, ग्यारह घण्टियाँ बजाईं ओफ ! रात के ११ बज गए और नींद का अभी तक पता नहीं। आँखें एक बार फिर उठीं और मेरे सीने पर पड़े गांधी के चित्र पर पुनः सिमिट गईं। मकड़ी का वह जाला अभी तक आँखों से ओझल नहीं हुआ था। शहर के बाहर फूसकी छोटी सी झोपड़ी मेरी आँखों के सामने झूल उठी। सन् ४२ की बात है। आजादी का सबक सुनाने महात्मा गांधी यहाँ पधारे थे। गांधी-चौक में उनका भाषण हुआ और भाषण क्या था, वह तो नौजवानों को मतवाला बना देनेवाला मधु-प्याला था। ठाकुर रामसिंह की नसों में भी जवानी का जोश था और क्षत्रिय वंशका खून, फिर वह क्यों पीछे हटता। उसने तुरन्त प्रतिज्ञा की कि जब तक देश आजाद न हो जायगा, वह आराम न लेगा।

बस क्या था, तिरंगा झंडा लेकर दीवाना बनकर वह जंगके मैदान में कूद पड़ा। उसके पास जमींदारी थी और उसकी नवविवाहिता पत्नी ! घर में माँ-बाप, भाई, बहिन थे—कमी किसी बातकी न थी। यदि चाहता तो वह भी सेठ धनपतराय की तरह लाखों की माया जोड़ लेता। परन्तु नहीं, वह तो धुन का पक्का था। उसने अपनी पत्नी को भी कसम खिलाई कि उसे भी देश के लिए कुछ करना होगा। उसकी नसों में भी आखिर दुर्गावती और लक्ष्मीबाई का खून था, फिर वह कैसे पीछे हटती। दोनों ने तन-मन-धन से सेवा की, सभा-सोसाइटियों में लेक्चर देकर और गाँव-गाँव पैदल चलकर लोगों को आजादी का सिपाही बना दिया। जगह-जगह रामसिंह ने लातें खाईं, कई माह अस्पताल में पड़ा रहा परन्तु वह पीछे न हटा। उसका आलीशान महल जला दिया गया, जमींदारी उसे बागी करार कर छीन ली गई, परन्तु उसने आह तक न की।

उसी दिन शाम की बात है, ठाकुर रामसिंह शहर के चौपाल में

लेक्चर दे रहा था। लोगों की भयंकर भीड़ उसका भाषण सुनने एकत्रित थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। एक ओर कान्स्टेबल और पुलिस अफसर यमदूतों-से खड़े थे, तो दूसरी ओर मिलिटरी के सशस्त्र नवजवान, उनमें भी अधिकांश भारतीय! ठाकुर साहब का भाषण क्या था, खून खौला देनेवाला भयंकर विस्फोट, जिसके सामने पुलिस और मिलिटरी के अफसर भी झुक गए। जब भाषण समाप्त हुआ तो एक गोरे अफसर ने एक सिपाही को आदेश दिया कि रामसिंह को गिरफ्तार कर लिया जावे। सिपाही रामसिंह के भाषण से इतना प्रभावित हुआ कि उसने गिरफ्तार करने से इन्कार कर दिया। ठाकुर रामसिंह उसकी स्थिति को अच्छी तरह समझते थे, बोले—मैंने अपना काम कर लिया, तुम्हें भी अपना कर्त्तव्य करना चाहिए। इतने में ही दूसरे अफसर ने आकर उनको गिरफ्तार कर लिया।

दूसरी ओर ठाकुर साहब की पत्नी थी। उसके नेतृत्वमें महिला समाज बगावत के लिए उतारू था। पुलिस ने बहुत कोशिश की कि वह झुंड फूट जाये पर उस समय तो हर औरत देश के खातिर मीरा सी दीवानी बन गई थी। आखिर वे न मानीं, तभी धाँयकी एक आवाज आई। लोगों ने देखा कि ठाकुर साहब की नवविवाहिता पत्नी धराशायी हो जमीन पर पड़ी है। उसका सुहाग मानो उस पर हँस रहा था। वह चल बसी, परन्तु जेल के सीकचों में बन्द ठाकुर रामसिंह को उसकी लाश भी देखने को न मिली। लहू का घूँट पीकर वह हँसता ही रहा!

१५ अगस्त आया!

वेष बदला, शासन बदला और अपने देश में अपना राज्य हो गया परन्तु ठाकुर रामसिंह की तकदीर न बदली। घर-द्वार, जमीन-जायदाद सभी कुछ नष्ट हो चुका था। बूढ़े माता-पिता दाने-दाने को तरस रहे थे,

भाई-बहिन साधनहीन, अपढ़ रह गए। परिणाम यह हुआ कि उसकी माँ आटा पीसकर अपने बूढ़े पतिका पेट भरती थी। भाई एक होटल में नौकर हो गया था। ठाकुर रामसिंह कोरा हाथ मलते रह गए।

चुनाव का समय आया, परन्तु चुनाव लड़ने को पैसा कहाँ से आये! वह आँखें फाड़-फाड़ कर चुनाव देखता रहा। वह अब सेठ धनपतराय, जो किसी समय उसका सबसे बड़ा दुश्मन था, की तारीफ के लम्बे-लम्बे पुल बाँधने लगा। आखिर वह करता भी क्या? गम के दो आँसू पीने के सिवाय चारा भी क्या था? उसके पुराने बँगले के पास ढोर बाँधने की जो सार थी उसी में वह आज-कल पड़ा रहता है और कभी-कभी शहर की इन लम्बी-चौड़ी सड़कों के बाजुओं से पत्थर के ढेले की तरह लुढ़कता दिखाई देता है। नौकरी की तलाश में दरदर भटकता वह रात्रिको उसी झोपड़ी में शरण लेता है। जहाँ किसी दिन सोने के दीप जलते थे, अब मिट्टी का दिया भी जलना कठिन हो गया है। तब कन्ट्रोल था पर अब छूट है, सारे बाजार मन-माना तेल मिलता है····और पत्नी···लगता है जैसे कभी शादी भी नहीं हुई। आखिर एक निकम्मे और दरिद्र के साथ भला कौन अपनी बेटी ब्याहता······और······

× × ×

और पानी भी गिर रहा है। झींगुरोंकी झनकार तन्द्रा के तार-तार कँपा रही है, चारों ओर सन्नाटा छाया है और हवा भी कुछ कम पड़ गई है। घड़ी के काँटे सिमिट कर एक होकर टन् टन् बजा रहे हैं! एकाएक भोंपुओं की तेज आवाज सुनाई दी। मैं चौंक उठा—क्या आग लग गई है! नहीं, नहीं, मुझे लगा जैसे कोई कह रहा है—१४ अगस्त खतम हो गया और अब १५ अगस्त आया है। शायद सातवीं बार मैं इन भोंपुओं की आवाज सुन रहा हूँ। रजाई समेट कर मैं एक-दम

उठ बैठा। गांधीजी की तस्वीर मुझसे न सम्हल सकी और वह मेरे पलंग के नीचे गिर पड़ी। मैंने आँख मल-मलकर देखने की कोशिश की, परन्तु मकड़ी के उलझे हुए जालों के सिवाय और कुछ भी मुझे दिखाई न दिया! भावनायें जितनी जल्दी उठी थीं, उतनी जल्दी ही लुप्त हो गईं। मैं पलंग छोड़ कर उठ बैठा। दरवाजा, जो हवा से बन्द हो गया था, खोल कर मैंने देखा, दर्वाजे के सामने बिजली की रोशनी पड़ रही है। उस रोशनी के उजाले में दर्वाजे की खूँट पर मकड़ी का एक बड़ा भारी जाला बना दिखाई दिया। उस जाले में दो मक्खियाँ फँसी हैं, जिनमें एक को तो कई मक्खियाँ मिल कर चूस रही हैं परन्तु दूसरी चुपचाप अभी उसका तमाशा देख रही है शायद नम्बर आने में देर है।

रिक्शेवाला

मोती तो अपने रिक्शे की सीट पर बैठा पैरों से चेन को आगे-पीछे घुमा रहा था। उसकी आँखें व्हैरायटी थियेटर के सामने लगे लाइट पर स्थिर थीं। वह उस ओर ध्यानावस्थित हो मानो उसके ध्यान में अपने को भुला चुका था। थियेटर की लाइट बुझी हुई थी जिसका अर्थ है कि चित्र अभी नहीं छूटा। मोती के अन्दर धँसे पेट में भयंकर आन्दोलन मचा था, वहाँ तो भूख के मारे चूहे कूद रहे थे। कभी-कभी एक लम्बी नींद भरी जम्हाई आ जाती, उसी के साथ आँखों से आँसू निकल पड़ते। उस समय मोती हाथों से आँसू पोंछ लेता और फिर सम्हलकर रिक्शे पर बैठ जाता। उसे सोने का क्या अधि-



कार है! नींद तो भाग्यवानों की अमानत है। ऐसे गरीब की, जो दिन भर से भूखा हो, नींद मित्र नहीं बन सकती। शायद इसलिए कि उसका मित्र, बनना स्वर्गनिवासिनी निद्रा का स्वयं अपना अपमान होगा। मोती के पेट में भूख की धधकती ज्वाला रह-रह कर धक्के दे रही थी, परन्तु फिर भी उसका आशामय काल्पनिक संसार एक तिनके की तरह बड़ा सहारा दे रहा था। उसे लगता कि थियेटर की घन्टी बजेगी, सामने की लाइट जलेगी, एक भारी भीड़ बाहर निकलेगी और कोई न कोई अवश्य उसके रिक्शे में जायगा। तब मोती को पैसे मिलेंगे और उनसे वह दिन भर के भूखे अपने पेट की ज्वाला को तृप्त करेगा।

एकाएक महाराज बाग से हवा का एक सर्द झोंका आया। उसका शरीर काँप उठा और क्यों न काँप उठे, एक फटी बन्डी और घुटने तक की धोती भला कड़ाके की पड़ती ठंड में क्या काम दे सकती है? मोती जरा सम्हलकर बैठ गया और उसने अपने दोनों हाथों को छाती से कस लिया। इसी समय वह सोचने लगा—अच्छा होता खेल छूटने तक मैं भी थियेटर के अन्दर बैठ जाता, ठँढ से तो कुछ रक्षा होती परन्तु तुरन्त मानो किसी ने उसे थप्पड़ मारी हो—खबरदार! दरिद्र होकर महलों के सपने देखता है! यह थियेटर केवल उनके बैठने के लिए है जिन पर चाँदी के भगवान् की दया हो। इतने में एक अजीब सी आवाज करता एक मच्छड़ उसकी नाक में घुसा और एक कान में। वह हाथ उठाकर उन्हें हकारने लगा कि उसकी दाढ़ी हैंडिल से टकराई। हाथ एकदम दाढ़ी पर चला गया और वह उसे सहलाने लगा—आह! मुझ से तो एक भिखारी अच्छा है। पर दूसरे ही क्षण उसके विचारों ने पलटा खाया—नहीं, भीख माँगना कामचोरी है, मैं तो मिहनत करके खाता हूँ। फिर उसने अपने आप लम्बी साँस खींची—

आह ! दिन भर से कोई सवारी नहीं मिली, जाने आज किसका मुँह देखकर उठा था ।

आधी रात बीत गई । मोती की हालत ढीली पड़ती जा रही थी—बुढ़ापा और भूख ! दुबले और दो असाढ़ ! तो क्या उसकी इच्छायें इतनी बड़ी थीं कि वे उसकी पहुँच के बाहर हों । वह तो केवल खाने को भोजन और पहिनने को कपड़े चाहता था । उसे चाँदी के रुपयों और कागज के नोटों को तिजोरी में रखने की अभिलाषा नहीं थी । वह कोई पद या ख्याति नहीं चाहता था, परन्तु समाज उसे दो टुकड़े रोटी भी न दे सका ! जवानी बीत गई, कई रातें उसने भूखे पेट पार कर दीं । कोई उसे अपनी लड़की देने तक को तैयार नहीं हुआ और होता भी कौन ? जब उसे अपने ही पेट के लाले पड़े थे । इस पर भी मोती ने हिम्मत न हारी और विश्वास तथा दृढ़ता के साथ जीवन-संग्राम में निरन्तर आगे बढ़ता गया, पर अब बुढ़ापे की सूखी कंकाल हड्डियों का ढाँचा जवाब देने लगा था । उसकी आँखें अंदर धँस गईं थीं और गालों में बड़े-बड़े गड्ढे पड़ गए थे ।

मोती ने थियेटर की लाइट की ओर फिर देखा । उसे लगा मानो लाइट जलने ही वाली है, वह फूल उठा । उसने पेट पर हाथ फेरा मानो किसी ने दुलार से सहलाया हो । पर फिर दूसरे क्षण उसकी आँखें कतार में खड़े सैकड़ों रिक्शों पर गईं—जाने मुझे सवारी मिलती है या नहीं ! जमाना प्रतिद्वन्द्विता का है । उसके लिए तो वह मानो रणक्षेत्र था जहाँ खड़ा वह सैनिक अपनी विजय-कामना के सुनहले स्वप्न देख रहा था । एकाएक घंटी बजी, सामने की लाइट जली और सेकेण्ड शो की भीड़ बाहर निकलने लगी । मोती में बिजली की शक्ति आ गई, वह अपने बुढ़ापे को भूल गया और रिक्शा आगे बढ़ाकर अपने स्वाभाविक स्वरों में चिल्ला उठा "रिक्शा बाबू;

रिक्शा !" उसके इन स्वरों में पसीने की कमाई से टपकने वाला आत्म-सन्तोष और आत्माभिमान झलकता था।

"ऐ रिक्शा !"—एक अधेड़ अवस्था के मारवाड़ी पगड़ीधारी सज्जन ने पुकारा।

रिक्शावाला, रिक्शा लेकर दौड़ा—"बैठिए सेठजी।"

"इतवारा का क्या होगा ?"

"सिर्फ एक रुपया सेठजी।"

इतने में दो-चार रिक्शेवाले उस तोंदधारी मारवाड़ी के पास दौड़े। सेठ सस्ते में अपना काम निकालना जानता था। "आठ आने से ज्यादा न दूँगा"—और मोती कुछ सोच सकता कि दूसरा रिक्शावाला सेठजी को लेकर चलता बना। मोती देखता रहा। वह सोचने लगा—'जनता का इसमें क्या दोष। ये रिक्शेवाले खुद अपने हाथ काँटा बोते हैं। उनमें बुद्धि नहीं।' मोती ने चौराहे पर एक नव-विवाहित २० वीं सदी के दम्पति को देखा और प्रसन्नता से चिल्ला उठा—"रिक्शा साहब !"

"तेलनखेड़ी का क्या लेगा।"

"सिर्फ दो रुपया।"

"क्या, दो रुपया ?"

"तीन मील भी तो है हजूर और को १ भी तो······!"

इतने में एक टैक्सी सामने आई और पत्नी ने पति से कहा—"हम इसी टैक्सी में चलेंगे, डियर !" मोती फिर खड़ा देखता रहा।

यह मशीन का युग है, वायुयान और रॉकेट चलने लगे हैं, मोटर गली-गली दौड़ने लगी है। फिर मनुष्य-चालित इस रिक्शे को कौन पूछता है ? उसने एक गहरी साँस खींची और पेट में हाथ फेरा कि सामने दो गांधी-टोपी-धारी सज्जन दिखाई पड़े। उसे लगा मानो वे

बुला रहे हैं, वह उस ओर बेतहाशा दौड़ पड़ा—"रिक्शा बाबू!" उनमें से एक ने दूसरे से कहा—"क्या अपन रिक्शा में चलेंगे ?"

दूसरे ने जवाब दिया—"हरगिज नहीं, हम रिक्शे में न जावेंगे। वह मानवता के विरुद्ध है। असेम्बली की अगली बैठक में मैं प्रस्ताव करनेवाला हूँ कि ये रिक्शे बन्द कर दिये जायें। इनसे मनुष्य की शक्ति चीण होती है।"

रिक्शावाला सकपका गया। उसका मुँह एकदम खुल गया, मानो वह कहना चाहता हो कि—"क्या आपकी असेम्बली में कभी किसी ने भूख से मरनेवाले मनुष्यों की मृत्यु को रोकने का कोई प्रस्ताव रखा है। रिक्शा चलाना पशुता है तो क्या भूखों मरना मानवता है?" पर वे आगे बढ़ चुके थे। मोती ने उनके मुँह से इतना ही सुना था—"चाँदनी रात है, पैदल चलेंगे।"

मोती की सारी आशा निराशा में परिणत हो चुकी थी। सड़क पर धीरे-धीरे सन्नाटा होता जा रहा था, और अब केवल उसे अपनी ही आवाज सुनाई दे रही थी, जो आसपास की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से टकरा कर उसके ही पास लौट आती थी। वह एक बिजली के खम्भे के नीचे रुककर बल्ब में मँडराते मच्छरों को देखने लगा। उसे लगा कि ये मच्छर उससे कहीं अधिक सुखी हैं, परन्तु एकाएक रिक्शे के खिसकने की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। उसने लौटकर देखा—दो युवक बिना कुछ कहे रिक्शे पर बैठ गये हैं। मोती ने भगवान् को धन्यवाद दिया और फिर रिक्शा खींचने लगा। सामने एक लम्बा चढ़ाव था। आधा फर्लांग चढ़ने के बाद ही मोती की हिम्मत पस्त हो गई, उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया, वह रिक्शा न चढ़ा सका। युवक रिक्शे से उतर गये और उसे एक अधन्ना देकर चले गये। मोती ने अधन्ना उठा लिया। वह उस चौकोर अधन्ने

कों घुमाने लगा। उसे लगा मानो वह अधन्ना उस पर एक करारा तमाचा है। क्या होगा दो पैसों में? क्या इससे उसकी भूख बुझ सकती है? लोग धर्मशाला, स्कूल और अस्पताल बनाने के लिये चंदा देते हैं पर क्या चंदा दो पैसों का होता है? नहीं, दो पैसे तो भिखारी को दिये जाते हैं, तो क्या वह भिखारी है? नहीं वह तो मिहनत-मजदूरी······हाँ, वह भिखारी ही तो है। यदि उसकी इस भीख और दूसरे भिखारियों की भीख में कुछ अन्तर है तो केवल उतना ही जितना 'पब्लिक चेरेटी' और 'प्रायवेट चेरेटी' में। पर मोती से पैसा फेंका न गया। उसने धोती के छोर में बाँध लिया।

मोती ने खाली रिक्शा से चढ़ाई पार की और उतार के एक बाजू खड़ा हो गया। सब ओर एक गहरा सन्नाटा छाया था। उसने अनुभव किया कि वह मानो उस समस्त दृष्टिक्षेत्र का राजा है। इतने में चमड़े का बेग लिए एक चश्माधारी सज्जन पीछे से रिक्शे पर आ धमके—"चलो, जल्दी स्टेशन चलो।" मोती एकदम यन्त्र की तरह सीट पर बैठ गया और रिक्शे को ढाल में आगे बढ़ा दिया। स्टेशन दूर न था। बात की बात में स्टेशन आ गया। यात्री ने प्लेटफार्म पर देखा, गाड़ी खड़ी थी। फिर बोला—"शाबास, लो डेढ़ रुपये!" और वह चल दिया।

मोती का कुम्हलाया चेहरा बिजली सा चमक उठा। वह आँख फाड़कर चाँदी के उस रुपये और अठन्नी को देखने लगा। इतनी पास के डेढ़ रुपये! उसका भला करेगा भगवान्, अभी दया संसार में बनी है। ऐसे ही दयावन्तों के बल तो पृथ्वी टिकी है, नहीं तो जाने कब की रसातल को चली जाती। चाँदी के वे डेढ़ रुपये मोती के लिए अतुलनीय वैभव से भी अधिक कीमती थे। उसे आत्मगौरव था कि उसने भीख नहीं माँगी, मिहनत से डेढ़ रुपये कमाये हैं।

पुलिस का एक सिपाही मोती के पास आ धमका—"ये पैसे कहाँ से लाया रे?"

"मिहनत के पैसे हैं जनाब, कमाये हैं"—शान से उसने उत्तर दिया। सिपाही ने मोती का हाथ पकड़ लिया—"बेवकूफ, रिक्शा चलाने का लायसेंस कहाँ है?"

मोती ने हाथ उठाकर कलाई पर आँखें दौड़ाई, वहाँ खाली धागा बँधा था। उसका खून सूख गया और पैरों से जमीन खिसक गई—"जाने भीड़ में अभी कहीं गिर गया।"

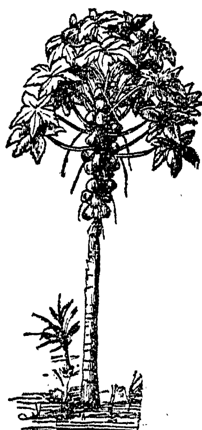
"चल बे बहानेबाज, चल पुलिस-स्टेशन!"

मोती ने सिपाही को आठ आने देते हुए कहा—"भूखा हूँ हुजूर। कल यहाँ खोजकर दिखा दूँगा, मेरा नाम लिख लो।" सिपाही की आँखें मोती के हाथ में चाँदी के गोल-गोल घूमते रुपये पर लगी थी—"देख, यदि बचना है तो उसे भी हवाले कर और भाग यहाँ से।"

मोती ने रुपया देने को हाथ बढ़ाया पर एकाएक उसके पेट ने धक्का दिया। उसने हाथ खींच लिया। उसे एकदम गुस्सा आ गया—क्या उसने चोरी की है? क्या उसने डाका डाला है? फिर यह घूस, किस अपराध के दण्ड की कीमत वह इस घूस से भर रहा है? उसका हाथ एकदम उठा और सिपाही के बायें गाल पर तड़ाक से जा पड़ा। सिपाही ने बूढ़े के दोनों हाथ जोर से पकड़कर पीठ में एक घूँसा मारा—हाय राम! और फिर उसे पता नहीं क्या हुआ।

मोती ने अपने को जेल में बन्द पाया। सन्तरी के जूतों की चर्र-मर्र की आवाज उसे सुनाई देने लगी। वह उठा और उठकर उसने सीकचों के बाहर देखा। एक वार्डर खाने की थाली ला रहा था। मोती का मन-मोर प्रसन्नता से नाच उठा। उसने जगत के समस्त सुखों की सीमा लाँघ ली, जीवन में पहिली बार उसे इतना

भोजन मिला है, सोने को गरम कम्बल मिले हैं और रहने को चीप तथा ईंटों का बना पक्का मकान। उसने मन ही मन ईश्वर को खूब आशीर्वाद दिया—आज उसकी सारी कल्पनायें साकार हुईं। उसे खाने को रोटी और पहिनने को कपड़े ही तो चाहिये थे।



भाग्य-रेखा



इतवार की सुबह थी।
अशोक अपने घर में आराम से पड़ा था। हफ्ते में एक दिन ही तो मिलता है नहीं तो बेचारा कचहरी की फाइलें रंगने में ही लगा रहता है। शाम को बड़ी २ फाइलें बांधकर लाता है, रात को १० बजे तक उनके साथ भिड़ा रहता है और फिर सुबह दफ्तर के जाने के पहिले तक। दिन-भर काम करते-करते अशोक थक जाता है और बदले में नब्बे रुपये इस हाथ ले उस हाथ साहूकारों को दे देता है। फिर उधार और फिर चुकता—बस, यही क्रम हर माह चलता है। घर में ५-६ व्यक्ति खानेवाले हैं, शहर का रहना और मँहगाई का समय—

क्या होता है इस छोटी सी रकम से ? उस इतवार को दफ्तर की झंझटों से मुक्त वह आराम से घरमें बैठा था। रोज तो उसे बच्चों को खिलाने की भी फुरसत नहीं रहती परन्तु नहीं, आज—"बाबू, हम बदार तलेंगे।

"हां बेटा अभी चलेंगे—चाय पीकर; हां हां मेरा मुन्ना...बड़ा अच्छा लड़का है।"

इसी समय बाहर से आवाज आई—बाबू जी !

अशोक जल्दी से उठा और उत्सुकता से बोला—"कौन रमेश ?"

"जी नहीं, मैं हूँ तानसिंह, दफ्तर का चपरासी।"

अशोक चपरासी का नाम सुनकर ही चौंक पड़ा और फिर जब उसने सुना कि बड़े बाबू ने आज दफ्तर में बुलाया है, जरूरी काम है, तो उसका खून—सूख गया। "जरूरी काम"—की संज्ञा से तो वह परेशान हो उठा है, जैसे दफ्तर में साधारण काम कुछ रहता ही नहीं है। उसने एक लम्बी सांस खींची—"हा भगवान् ! इतवार को भी फुरसत नहीं। इस जिन्दगी से तो कोल्हू का बैल अच्छा जिसे कुछ फुरसत तो मिल ही जाती है।" और फिर कपड़े पहिनकर वह दफ्तर की ओर चल दिया।

अशोक को लगा जैसे रास्ता चलते मजदूरों, और किसानों का जीवन उससे कहीं अच्छा है। बाबू गिरी क्या है—मशीन की तरह पिसना और अपने अरमानों को आटे की तरह पीसना। बाबू से तो दफ्तर का चपरासी होना अच्छा है। यहां आराम का नाम नहीं और इतने अधिक परिश्रम के बाद परिणाम क्या होता है—"बाबू लिस्ट आज ही जाना है।"

—"सर, बहुत है टाइप करने में दो दिन लगेंगे।" "क्या ? दो दिन ! हम कहते हैं आज जायगी आज। दिनभर होटल में बैठे गुल-छर्रियाँ उड़ाते रहते हो, पांच बजने आते हैं तब काम शुरू होता है।

याद रखो, लिस्ट आज जायगी, समझे !"—और निरुत्तर मुँह लटकाये बाबू एक ओर चला जाता है ।

अशोक को पत्थर से ठोकर लगी । एक हल्की चीख के साथ उसने आँख उठाई, सामने वह अलीशान इमारत दिखाई दी जिससे अशोक का जीवन चल रहा था । आंख की पलकें जब नीचे उतरीं तो उसने देखा कि चौराहे के बाजू में रामानन्दी तिलक लगाये, दो-चार पोथी पत्रा लिए और एक पटिए पर हस्तरेखा का चित्र रखे एक ज्योतिषी महाराज बैठे हुए हैं । अशोक के कदम एकाएक उस ओर मुड़ गए, वह सोचने लगा—"ज्योतिष-शास्त्र में सब कुछ लिखा रहता है फिर ज्योतिषी जी से अपना भविष्य क्यों न पूछ लिया जाय ! इस नारकीय जीवन का कभी अंत होगा या नहीं ।" और ज्योतिषी जी को अत्यंत श्रद्धापूर्वक अभिवादन कर अशोक ने अपनी दाहिनी हथेली सामने बढ़ा दी । आशीर्वादात्मक हाथ फेरते हुए ज्योतिषी जी ने बड़े ध्यान से हाथ की रेखाओं को देखना प्रारम्भ कर दिया । फिर हाथ में एक नुकीली पेन्सिल ले दूर से प्रत्येक रेखा पर चलाते हुए ज्योतिषी जी बोल उठे—"ओ हो ! आखिर इतने हैरान क्यों हो ? भाग्य तो जन्म से साथ लेकर आए हो , दो-दो भाग्य रेखा, धनेश-चंद्रमा, विद्या के स्थान में गुरु, बुध स्वामी है, सूर्य सी प्रतिभा !... १०० वर्ष की लम्बी आयु !... और हाँ, एक बहुत बड़ा योग है तुम्हारे हाथ में वह है राजयोग ! छः महिने के अन्दर मजिस्ट्रेट हो जाओगे मजिस्ट्रेट !" फिर जरा और ध्यान से देखकर पंडित जी ने कहा —"अरे ! ऐसी रेखा तो मैंने डा० रमाकान्त (जो डी० सी हैं) के हाथ में देखी थी । कैसा सुन्दर भाग्य है, भगवान् भाग्य दे तो ऐसा—" यह सब ज्योतिषी जी इतने जल्दी कह गए मानों हाथ में सब कुछ लिखा है लेकिन साधारण व्यक्तियों के नेत्र उसे नहीं पढ़ सकते । अशोक अपना भविष्य सुनकर

मन ही मन फूल उठा। तत्काल ही सवा रुपया दक्षिणा दे और पंडित जी से 'आयुष्मानूभव' का शुभाशीर्वाद ले वह दफ्तर की ओर चल पड़ा।

दफ्तर के अन्दर पैर रखते ही बड़े बाबू खीझे हुए जानवर की तरह चिल्ला उठे—"कितना बजा है अशोक बाबू? आठ बजे बुलाया था न?"

"इतवार का दिन है जरा उठने में देर हो गई और फिर चपरासी भी तो ७ बजे पहुँचा था, अभी ६ ही तो बजे हैं, बड़े बाबू!"

"क्या ६ बजा है! तो क्या यह मेरे घर का काम है? याद रखो अशोक, तुम्हें ३० दिन के चौबीसों घन्टे की तनख्वाह मिलती है, मालूम है न?"

"जी मालूम है"—अशोक ने एक संक्षिप्त उत्तर दिया, और फिर चुपचाप जाकर अपना काम करने लगा।

आज अशोक का मन काम करने में नहीं लगा। जिसे अपने जाज्वल्यमान भविष्य का पता लग गया हो, जिसको उसकी अंधी आँखें अभी तक नहीं पढ़ पाई थी उसे डर काहें का और फिर बाबू की इस नौकरी से? अशोक आज कोई काम न कर सका, उसे रह रहकर ज्योतिषी जी के शब्द याद आते—"धनेश चन्द्रमा है...दो दो भाग्य रेखायें....ओ हो! ऐसी रेखायें मैंने डा० रमाकान्त के हाथ में देखी थीं....तुम छः माह में मजिस्ट्रेट हो जाओगे....।"

"छः माह में मजिस्ट्रेट—"आपही आप अशोक अट्टहास कर उठा परन्तु फिर दूसरे ही क्षण किसी गम्भीर विचार में पड़ गया। शायद वह बाबुओं के इतिहास के पन्ने पलट रहा हो, या देखने की कोशिश कर रहा हो कि क्या कभी कोई बाबू मजिस्ट्रेट हुआ है? उसने बहुत सोचा लेकिन कुछ पल्ले न पड़ा। आखिर उसने एक गहरी सांस ली और अपने आप कह उठा—"सम्भव है मैं ही

अपने भाग्य से बाबुओं के इतिहास में एक नया अध्याय खोलूं।"

सामने टंगी घड़ी ने एक बजाये। सुबह से अशोक ने नास्ता भी नहीं किया था, बड़े बाबू का परवाना जो पीछे लगा था, अंत में उसने सारी फाइलें समेटी और चलने को ज्योंही तैयार हुआ त्योंही बड़े बाबू भेड़िये की तरह चिल्ला उठे—"चल दिये अशोक बाबू? आज काम पूरा होना चाहिये, समझे न?" "भूख लगी है बड़े बाबू! कल जल्दी आकर साहब के आने तक कर ही दूँगा"—विनम्र स्वर में अशोक ने उत्तर दिया।

"तो यहाँ खाया किसने है? मैं तो सात बजे से बैठा हूँ। काम अभी पूरा होना चाहिये, अन्यथा साहब से तुम्हारी शिकायत कर दी जावेगी, टेम्परेरी बाबू हो, जानते हो न"—एक अहम् भरे आदेशात्मक स्वर में बड़े बाबू ने कहा।

अशोक इसे अधिक सहन न कर सका, जब देखो तब साहब का तकाता। बाबूगिरी क्या की है अपने को बेच दिया है और उसके मुँह से निकल ही पड़ा—"अब आप रिपोर्ट ही कर दें बाबू साहब। ऐसा ताव दिखाते हैं जैसे अपने पाकेट से पैसा देते हों।"

अशोक दफ्तर छोड़कर चल पड़ा। रास्ते भर वह ज्योतिषी की बातों को सोचता रहा। ज्यों ज्यों वह उन्हें सोचता त्यों-त्यों उसके अधरों पर मुस्कान खिलती जाती—"मैं सोच रहा था कि जीवनभर इसी गड्ढे में सड़ना होगा, पर जब मजिस्ट्रेट होऊँगा तो···इन सभी से ऐसा बदला लूँगा कि इन्हें भी पता लग जायगा। दो दिन में सारी मस्ती भूल जायगी और करते-धरते कुछ न बनेगा। इसी विचार धारा को जैसे किसी ने धक्का दिया हो ··इसी वर्ष हो मैंने बी० ए० किया है, कितने बी० ए० पास मारे-मारे फिरते हैं, मेरे पास कोई विशेष साधन भी नहीं, फिर मजिस्ट्रेट होने के लिए लॉ होना भी तो जरूरी है।

फिर छः माह में मजिस्ट्रेट ! यह कैसे हो सकता है पर नहीं, यह बात तो ज्योतिषी ने बताई है, कैसे झूठ हो सकती है ! मेरी शादी के विषय में एक ज्योतिषी ने कभी बताया था और वह बिलकुल ठीक निकला...फिर भाग्य की बात कौन जानता है। घर में बैठे–'राम की झोली'–दौड़ती है। हाँ तो मजिस्ट्रेट होते ही (यदि भाग्यवश यही हो गया) पहले बड़े बाबू को साफ करूँगा फिर उस सुपरिन्टेन्डेन्ट को जिसने थोड़ा सा 'लेट' आने पर 'मूर्ख' कहा था।....पता लगेगा किससे पाला पड़ा है।" इस तरह जाने कितने विचार-वितर्कों में उलझा अशोक अपने घर पहुँचा। आते ही उसका मुन्ना उससे लिपट गया। अशोक ने उसे उठाकर गले लगा लिया। उसकी प्रसन्नता उबलते दूध की तरह छलकने लगी, इसीसे वह उसदिन भरपेट भोजन न कर सका। रात को नींद भी नहीं आई—"भगवान कब छः माह पूरे करता है।"

+ + +

दिन व्यतीत होते गए और यहाँ दफ्तर में अशोक का झगड़ा भी बढ़ता गया। बड़े बाबू का बैर पानी में रहकर मगर से बैर करना था, पर अशोक को इसकी परवाह नहीं थी। ज्योतिषी का दिव्य प्रकाश सदा इसके साथ रहा। उसे दृढ़ विश्वास था कि एक न एक दिन वह भविष्यवाणी सत्य होकर रहेगी क्योंकि भाग्य की विचित्र लीला पर उसे विश्वास था। जंगल में पत्थरों के बीच लहलहानेवाली हरी-भरी तुलसी की रक्षा कौन करता है, जब कि घर में रोज पूजी जानेपर भी वह मुरझा जाती है।

समय जाते देर नहीं लगती। छः माह पूरे होने को आ गए, पर मजिस्ट्रेट होने के कोई आसार नजर नहीं आए। उल्टे यहाँ दफ्तर में बड़े बाबू से रोज किसी न किसी बात पर दो-दो गरम बातें हो जाती। इतने पर भी अशोक विचलित नहीं हुआ।

इतवार का दिन था। अशोक रेडियो के पास बैठा था। इसी समय साहब के दस्तख़त से फिर एक 'परवाना' लेकर तानसिंह आ पहुँचा। हाय राम! आज फिर जाना पड़ेगा। नहीं, मैं नहीं जाऊँगा और उसने 'परवाना' फाड़कर फेंक दिया। दूसरे दिन जब वह दफ्तर पहुँचा तो उसकी टेबुल पर एक लम्बा सा पेपर रखा था। अशोक हर्ष से उस ओर लपका शायद सोच रहा था मजिस्ट्रेट होने की आज्ञा हो परन्तु उसे पढ़ते ही वह धक् से रह गया। उसमें लिखा था—"तुमने आज्ञा का उलंघन किया है, तुम्हें नौकरी से क्यों न निकाल दिया जाय?" थोड़ी देर वह 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' हो उसे घूर घूर कर पढ़ता रहा। इसी समय ज्योतिषी की दिव्य-भविष्यवाणी ने डूबते को तिनके की तरह सहारा दिया। उसने जो मन में आया अनाप-शनाप लिखकर उस 'परवाने' को लौटा दिया। दो बजे के लगभग साहब ने अशोक को बुलाया। अशोक आज साहब का डांटना न सह सका और उसने दो चार शब्द साहब को कह दिए!

पांच बजे के लगभग जब अशोक दफ्तर छोड़कर घर की ओर चला तो सारी घटनायें चक्र की परिधि की भाँति उसके मस्तिष्क में चक्कर खाने लगीं। उसे लगा मानो वह उसकी धुरी पर खड़ा है। साहब को उसने जो कुछ कहा है जाने उसका क्या परिणाम होता है। कहीं नौकरी न चली जाय नहीं तो मजिस्ट्रेट होने की बात दूर रही, पांच साल की कमाई भी नष्ट हो जायगी। फिर मैं क्या करूँगा—ये विचार आज उसके मस्तिष्क में इतने घने छा गए कि ज्योतिषी की भविष्यवाणी उसका साथ न दे सकी। घर में वह न तो भरपेट भोजन कर सका और न सो ही सका।

\+ \+ \+

अशोक सुबह उठा। आकाश बदराया था। वह उस ओर निर्निमेष

देख रहा था—कहीं मेरा भविष्य इस गहरे आकाश की बदराई में न बिलीन हो जाये। उसे अपना शरीर भी बोझिल लग रहा था, जैसे वह मन-मन भर पत्थरों का भार बहन कर रहा हो। ग्यारह बजे जब वह दफ्तर की ओर चला तो किसी अनजान आशंका से उसके पैर उस ओर न बढ़े। आत्मा रह रहकर उसे कुरेदने लगी। आत्मा अपना निष्पक्ष निर्णय तत्काल दे देती है। यदि आत्मशक्ति पर निर्भर होकर चला जाय तो फिर कोई शक्ति उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। वास्तविकता अशोक ने उस समय जानी जब दफ्तरों में जाते ही उसे 'आर्डर' मिला कि आज से उसकी नौकरी समाप्त हो गई है। अशोक के मुँह से एक शब्द भी न निकला। मजिस्ट्रेट होने की कल्पना, जो अभी तक उसका एकमात्र सहाराथी, सदा के लिए अनन्त के उस गंभीर अन्धकार में बिलीन हो गई जहाँ से निकली थी।

इस समय अशोक सोच रहा था—क्या वह पुनः उस ज्योतिषी के पास भाग्य पूछने जाये या साहब और बड़े बाबू से जाकर क्षमा-याचना करे! कभी-कभी तो वह दायीं हथेली आंख फाड़-फाड़कर देखता—"तुम छः महिने में मजिस्ट्रेट हो जाओगे....!" और कभी क्षितिज के विस्तृत-शून्य में उसकी आँखें कुछ खोजने लगतीं—शायद रोटी का नया सहारा!



ग्राम-देवता

बंगाल में भवानीपुर नामक एक छोटा सा गाँव है। आबादी २५-३० घर की होगी। गाँव के बाहर गँवड़े में कुए के पास एक पुराना सा मंदिर बना था, अच्छा हो उसे मढ़िया कहा जाय। उसका रंग क्या होगा यह भी कहना कठिन था क्योंकि लगातार अनेक बरसातों की आघात सहते-सहते वह जीर्ण-शीर्ण हालत में पहुँच चुकी थी। पीछे के कुछ पत्थर भी गिर गए थे। जिससे दो-एक झरोखे बन चुके थे। इस छोटी सी मढ़िया में प.थर के एक देवता की स्थापना की गई थी, जिसे 'ग्राम-देवता' कहकर पुकारा जाता था। यह देवता उस पूरे गाँव का रक्षक



समझा जाता था क्योंकि एक तो उसकी स्थापना ग्राम के द्वार पर की गई थी और दूसरे जल-वृष्टि करना भी इसी देवता का कार्य समझा जाता था। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह बड़ा हो या छोटा इस ग्राम-देवता की पूजा करता और आते जाते बड़े श्रद्धा से मस्तक झुकाता।

इस मढ़िया के पास ही दो मंदिर और थे जो निश्चय ही इस मढ़िया से काफी अच्छी हालत में थे। इनका निर्माण काल बहुत बाद का रहा होगा। इनमें से एक तो शिवलिंग की स्थापना की गई थी और दूसरे में महाकाली की। प्रायः सभी भक्त प्रातः काल उठते ही शिवमठ में पहुँच कर शिव की आराधना करते, देवी के दर्शन करते फिर 'ग्राम-देवता' को मस्तक झुकाकर अपने घर वापिस आ जाते। शिव-रात्री को अच्छा मेला भी लगा करता। शिव की तरह देवी की मान्यता भी कुछ कम न थी। नवदुर्गा में देवी का पूजन देखते बनता। चोर और डाकुओं को यही देवी शरण-दायनी थी। उनकी धारणा थी कि यदि देवी की आज्ञा लेकर चोरी की जाय तो अच्छी सफलता मिलती है। बङ्गाली स्त्रियाँ भी देवी को बहुत मानती थीं। उपरोक्त देवताओं की तरह वर्षा के आगमन के समय ग्राम-देवता के सामने अच्छा मेला लगता, पूजा-पाठ होती और सारा गाँव यह—आशीर्वाद माँगता कि—इस वर्ष अच्छी वर्षा हो। जब धान पककर तैयार हो जाती तब किसान देवी की पहिले से अधिक पूजा करते। विभिन्न रङ्गों पुष्पहारों से उस मढ़िया का कोना कोना चमक उठता। धूप और अगरबत्ती की सुगन्ध से सारा वातावरण सुवासित हो उठता और लड्डू, दही तथा अन्य स्वादिष्ट-फलों का देवता के सामने एक ढेर लग जाता। उस समय इस देवता की जितनी आराधना की जाती उतनी साक्षात् शक्ति, जिसे बङ्गाली बहुत मानते हैं की भी न होती। तात्पर्य यह है कि भक्तवत्सल त्रिकालसत्य स्वरूप पुरारि यदि पुरुषों के प्रधान देव थे और शील तथा

शक्ति की साकार प्रतिमा देवी स्त्रियों की सन्तापहारिणी व चोर-डाकुओं की शरणदायिनी थीं तो यह ग्राम-देवता सभी वर्गों को समानरूप से पूज्य था। जब कि देवी और शङ्कर के पास अनेक कार्य थे तब इस देवता के पास केवल एक ही कार्य था—नियमित रूप से समय पर वर्षा करना ताकि फसल अच्छी हो और सूखा न पड़ने पाये। ग्राम-देवता भी अपना कर्त्तव्य करने में कोई कसर न करता। प्रतिवर्ष नियमित रूप से आकाश में बादल छा जाते और अच्छी वर्षा होती। धान के खेत लहलहा उठते और कृषकों के हृदय आशा तथा उमङ्गों से फूले न समाते।

× ×

बात सन् १६४२ की है। जाने उस वर्ष क्या हुआ कि एक बून्द भी पानी न गिरा, वर्षाऋतु लग गई और श्रावण बीत गया, परन्तु आकाश में मेघ तक न उठे। नदी, तालाब और कुएँ सब जलाशय सूख गये। लोग बून्द-बून्द पानी को तरसने लगे! सारी वनस्पति पानी न पाने के कारण सूख चली, पशु-पक्षी घबड़ा उठे और न जाने कितने काल के गाल में समा गए। खेतों की मिट्टी इतनी कड़ी पड़ गई कि लोग फसल तक न बो सके। सारे गाँव में हा-हाकार मच गया। लोगों ने सोचा निश्चय ही हमारा ग्राम-देवता हमसे-असन्तुष्ट है, अतएव गाँव के लोगों ने चन्दा इकट्ठा कर एक यज्ञ रचाया। लगातार आठ दिनों तक हवन और पूजन-पाठ होता रहा। सभी लोगों ने एक स्वर से देवता की आराधना की—"हे देव! हमारे जो अपराध हों क्षमा करो। हे दयालु देवता! हम पर दया करो। माता वसुन्धरा की गर्मी शान्त करो अन्यथा हम सब मर जायेंगे। हमारे खेतों की ओर देखो, तवा से तप रहे हैं, जमीन फट पड़ी है, रक्षा करो! रक्षा करो!" स्त्रियाँ बिलख-बिलखकर कहतीं—"अबलाओं की रक्षा करो स्वामी! अकाल पड़ रहा

है, भूखों मरने का समय आ रहा है। हमारे सिन्दूर और गोद की रक्षा करो! आखिर यह निष्ठुरता कैसी?"

परन्तु इस पूजा-पाठ का देवता पर कोई असर न पड़ा। चारों ओर अकाल फैल गया। चारों दिशाओं से जलती लपटें उठने लगीं। मौत की गिनती करना दुस्तर हो गया। इस पर गाँव के लोगों ने एक पंचायत बुलाई और उसमें यह तय हुआ कि देवता ने बेईमानी शुरू करदी है। इतनी पूजा-पाठ से भी यह तिल भर न पिघला। अब सीधी अँगुली से घी न निकलेगा। हमें भी देवता के साथ उसी के समान निष्ठुर होना पड़ेगा। बस, क्या था देवता को मंदिर से निर्वासित कर सामने खेत की एक मेंड़ पर रख दिया। पूजा-पाठ सब बन्द कर दिये गये। अब यह बीथिकाओं का देवता बन गया। जो लोग आते जाते उसे नमन् करते वे अब उसकी ओर देखते भी नहीं थे और यदि धोखे से किसी की नजर पड़ जाती तो वे नाक-भौं सिकोड़ने लगते। भजन-पूजन की जगह वह देवता अब इठलाती, बलखाती जवानी में चूर उन ग्राम-युवतियों के मुख से प्रचलित लोक-गीत सुनने लगा। आती-जाती पनहारियों का दृश्य देखने लगा। सुगन्धित धूप-दीप की जगह बाहर की चलती लू और गर्मी उसे सहन करनी पड़ती। इस तरह एक मास व्यतीत हो गए, परन्तु परिस्थिति वही बनी रही। देवता अब भी मौन था। वह तनिक भी न पिघला, उल्टे, आने-जाने वाले लोगों को दया हो आती। छिः छिः, राम-राम कहते आगे चले जाते। श्वेत धोती के छोर पर बँधे चाबी के गुच्छे की आवाज करतीं स्त्रियाँ अपलक-देवता की ओर निहारतीं आगे बढ़ जातीं।

धूप तेज होती गई और तीव्र गर्मी से आहत देवता की शकल धूमिल होती गई।

दोपहर का समय था। रवि किरणें लम्बरूप पृथ्वी पर पड़ रही

थीं। एक कन्या सिरपर घट लिए पनघट की ओर चली आ रही थी। देवता की यह दशा देखकर उसे बड़ा क्षोभ हुआ। खाली घड़ों को जगत पर रखकर वह देवता के पास गई। उसने देवता को स्पर्श किया। भयंकर गर्मी के कारण उसका शरीर तेजी से तप गया था। वह बहुत दुखी हुई और बोली—"हाय देवता! इतने जल रहे हो और गाँव के निष्ठुर लोगों को तुम पर दया न आई! तुम्हें निर्वासित कर दिया!" फिर उसने घड़ों में पानी ला-लाकर देवता के मस्तक पर डालना शुरू कर दिया। देवता की गर्मी शान्त हुई। फिर पास लगे पलाश के पत्तों की उसने एक छोटी सी छांजन बना दी ताकि धूप से देवता की रक्षा हो सके और श्रद्धापूर्वक नमन् कर वह चली गई।

देखते-देखते आकाश में बादल छा गये, धूप मरी और भयंकर मेघ पृथ्वी पर उतरने लगे। कड़कड़ाहट हुई और तेज वर्षा होने लगी। नदी, तालाब तथा खेत पानी से लबालब भर गये। प्यासी वसुन्धरा तृप्त होकर फूल उठी, पशु-पक्षी जाग उठे, मेंढ़क टर्राने लगे।

जब मेघ कुछ कम हुआ तो लोगों ने आकर देवता की पुनर्स्थापना उस मढ़िया में कर दी। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ, बोले—"आखिर यह देव कितना अजीब है। सीधे-सीधे काम न चला, सड़क पर डालने से देवता के कान खुले। सच है, अपनी विपत्ति सबको दिखती है; पराई पीर कौन जाने। आज देवता को मालूम हुआ कि पराया दुख कैसा होता है? और फिर शंख-घड़ियाल बज उठे, पर देवता पूर्ववत् मुस्कराता रहा। उसकी मुद्रा में कोई अन्तर न पड़ा।

लोग हँसते हँसते एक ओर चले गए, परन्तु उस अबोध बालिका के आराधना की कल्पना भी वे न कर सके। क्योंकि पलाश को वह छोटी सी छाजन पानी की तीव्र-धारा के साथ बहकर न जाने कहाँ विलीन हो गई थी।

खूनी कौन ?



"कौन कहता है कि साहित्य साधना, शव-साधना है ?" अत्यन्त गर्व के साथ कहते हुए प्रदीपजी ने अपनी स्प्रिंगदार कुर्सी को चारों ओर घुमाते हुए पुस्तकों से ठसाठस भरी आलमारियों को देखा फिर 'विल्स' के पैकेट से एक सिगरेट जलाते हुए प्रदीप जी धुआँ उड़ाने लगे, तभी फोन की घन्टी बजी—मैं तो फोनों के मारे परेशान हूँ, रात-दिन घन्टी बजती ही रहती है"—कहते हुए उन्होंने फोन उठाया—"हलो, प्रदीप स्पीकिंग।"

"मैं सम्पादक 'रिमझिम बोल रहा हूँ।"

"कहिए आज्ञा ?"

"आज्ञा क्या साहब एक

छोटी सी प्रार्थना है। हम 'रिमझिम' का एक विशेषाङ्क निकाल रहे हैं, उसके लिए आपसे एक अच्छी 'प्रेम-कहानी' चाहिए है। अच्छा हो, हमारे लिए कोई कहानी विशेष रूप से लिख दें।"

"अच्छा, कल सुबह भेज दूँगा आज रात को कहानी लिख दी जायगी"—एक अहम भरे शब्दों में उत्तर देकर प्रदीप जी ने टेलीफोन रख दिया।

प्रदीप जी एक बहुत बड़े कलाकार हैं। उपन्यास और कहानी लिखने में काफी ख्याति पा चुके हैं। अब तक उनकी सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और अभी होती जा रही हैं। एकाध हफ्ते में वे एकाध पुस्तक लिख ही डालते हैं और लिखते ही प्रकाशक शहद की मक्खी की तरह उनपर टूट पड़ते हैं। उनके कमरे की जितनी आलमारियाँ पुस्तकों से भरी हुई दिखती हैं, उनकी तीन-चौथाई पुस्तकें प्रदीप जी की ही लिखी हुई हैं। इसी का परिणाम है कि उन्होंने यह भारी आलीशान इमारत बनवा ली है, घर में सोफा-सेट, रेडियो, गद्दे, मोटर-कार और ऐसे सभी प्रसाधन इकट्ठे हो गए हैं जो किसी भी व्यक्ति को रईस की संज्ञा देने के लिए काफी हैं। धन के साथ प्रदीप का नाम भी बहुत फैला है। आज के हर छात्र और छात्रा की जीभ में प्रदीप जी विराजमान हैं। कालेज की पाठ्य-पुस्तकों के बीच उनकी पुस्तकें होना उतना ही जरूरी है जितना जीने के लिए पानी। इसीसे यदि यह कहा जाय कि प्रदीप जी हजारों युवक-युवतियों के जीवन हैं, तो अनुचित न होगा।

प्रदीप जी 'रोमान्स' के लेखक हैं, रोमान्टिक भावनायें जैसे उनकी नस-नस में व्याप्त है। उनकी प्रत्येक रचना रोमान्स की दौड़ में इतनी बेजोड़ होती है कि— पाठकों के दिमाग फड़कने लगते हैं और दिल एञ्जिन की तरह धड़कने लगते हैं। वास्तव में प्रदीप जी इसी को

अपनी महान सफलता समझते हैं। उनका कहना है कि सच्चा कथाकार और उपन्यासकार वह है जो उनकी तरह पाठकों पर पूरा-पूरा रङ्ग जमा सके, जिसे पढ़कर पाठक अपने आपको कब्जे में न रख सकें। उनके विचार में चाहे हिन्दी का साहित्यकार उनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में भले ही न लिखें, परन्तु उनकी प्रसिद्धि की उपेक्षा वह नहीं कर सकता। 'रामनाम' की तरह जब हर नवजवान और नवयुवती हर-दम प्रदीप जी का नाम लेता है तो फिर हिन्दी साहित्य के इतिहास में नाम लिखे जाने अथवा न लिखे जाने से क्या अन्तर पड़ता है ?

× ×

रात्रि की निस्तब्धता चारों ओर सन्नाटे भर रही है पर प्रदीप जी का ड्राईङ्गरूम बिजली के प्रकाश से अभी भी जगमगा रहा है। लगभग १२ बजे होंगे। इस समय प्रदीप जी अपनी राइटिङ्ग टेबल पर बैठे किसी गहरे विचार में मग्न हैं। सिगरेट का धुवां अभी भी कमरे में चक्कर काट रहा है। एकाएक प्रदीप जी उठे और उन्होंने सारे लाइट बुझा दिये सिर्फ टेबल पर रखा लेम्प हलके नीले रङ्ग का प्रकाश देता रहा। प्रदीप जी ने पहिली सिगरिट एशट्रे में बुझाकर दूसरी जलाई। उसके लच्छेदार उलझे हुए धुयें को फाड़ती हुई उनकी विचार-वीथिका सनसनाते तीर की तरह आगे बढ़ती गई और उनके हाथ श्वेत-कागज पर भाँति-भाँति के नीले अक्षरों को हीरे की तरह जड़ने लगे। उनकी कलम प्रेम की व्याख्या करने में खो गई। उस प्रेम की व्याख्या नहीं जो दूध की तरह निर्मल है, जो अमृत लोक के द्वार उद्घाटित कर सौन्दर्य की अनिर्वचनीय झाँकी मन की आँखों के सामने झलका देता है, और जो देवलोक से देवताओं का भेजा हुआ अमर प्रसाद है जिसके बिना मानव विषमता के पहाड़ ढोता मर्त्य-लोक की इस कठोर शैय्या पर नहीं रह सकता।

अपितु वह उस प्रेम की व्याख्या करने लगे जो शीतल और शान्त समुद्र के हृदय में भी एक भयङ्कर ज्वार पैदा कर देता है, जो वायु की मन्द लहरों को तूफान में बदल देता है, जहाँ मानव के मस्तिष्क की बौद्धिकता, भ्रान्ति के परदे में भटकने लगती है। जिसे पढ़कर पाठकों के हृदय उबलते हुये दूध की नाईं व्याकुल हो धड़कने लगते हैं, जहाँ पाठक अपना सन्तुलन खोकर अपने चरित्र नायक के पीछे अन्धा बनकर दौड़ने लगता है।

इस तरह प्रदीप जी मेलगाड़ी की चालसे कागज की शीटें की शीटें भरते चले जा रहे थे। इतने में उन्होंने कमरे के दर्वाजे से एक छाया सी आती देखी। उनकी विचार-धारा में एक अवरोध आ गया और वे व्यग्रता के साथ उस छाया को देखने लगे। प्रदीप जी आश्चर्य में पड़ गए, दर्वाजे तो सभी बन्द थे, फिर....! छाया आगे बढ़ती आ रही थी। अब प्रदीप जी ने देखा कि वह केवल छाया ही नहीं बल्कि शूट-बूटधारी साक्षात् मानव है जो हाथ में पिस्तौल लिए हुए है। प्रदीप जी एकदम घबड़ा उठे, शरीर से पसीना छूटने लगा, हाथ से कलम गिर गई और मुँह से निकल पड़ा—"तुम कौन ?

"मैं कौन हूँ, नहीं दिखता क्या ?"

"दिखता तो है....परन्तु तुम्हारा नाम ?"

"मेरा नाम जानकर क्या करोगे प्रदीप जी ?"

प्रदीप जी चौंक पड़े—"यह मेरा नाम भी जानता है! पर मैंने तो ऐसी शकल कहीं नहीं देखी! मेरा इससे परिचय""। और प्रदीप जी की लड़खड़ाती विचार-शृँखला अतीत की स्मृतियों को बटोरने में लग गई। उन्होंने बहुत सोचा पर ऐसी शकल की झलक भी उनकी आँखों के सामने नहीं आई। अन्त में थोड़ा साहस कर वे बोले—"इतनी रात को पिस्तौल लेकर इस भयावह लिवाज़ में आने का मतलब ?"

"मतलब ?"–उसने एक गहरा अट्टहास किया। उसकी हँसी सारे कमरे में गूंज उठी–"मतलब जानना चाहते हो ?"

प्रदीप जी मौन थे उन्होंने केवल सम्पत्ति–सूचक सिर हिला दिया।

"तो सुनो"–उसने वायु की गतिमान लहरों सा आघात करते हुए कहा–"मैं तुम्हारी हत्या करने आया हूँ।"

"मेरी हत्या ! मेरी····" प्रदीप जी का गला सूखने लगा। जीभ को होठों पर फेरते हुए उन्होंने कहा–"मेरा अपराध ?"

"तुम्हारा अपराध ! तुम्हारा एक अपराध नहीं, अनेक अपराध हैं। यदि उन सबको इकट्ठा कर तौला जाये तो उनका वजन तुम्हारी इस विशाल भीम काया से भी अधिक होगा और यदि उनका विश्लेषण किया जाय तो वे तुम्हारी इस हसीन सूरत को कोयले से भी काली और गन्दा बना देंगे।"

प्रदीप जी–'किंकर्तव्यविमूढ़'–उसकी ओर देख रहे थे। उनके चारों ओर धुंधलापन छा गया था और लगता था जैसे पैरों से जमीन खिसक रही हो। पर इसी समय उनका ध्यान पास रखे टेलीफोन पर गया। उन्होंने उसे उठाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया पर हाथ वहाँ तक न पहुँच सका। उस व्यक्ति ने क्रोध से उनके हाथ झकझोर दिए और उनकी विवशता पर ठहाका मार कर हँसते हुए बोला–"पुलिस को बुलाना चाहते हो ?"

प्रदीप जी निरुत्तर थे।

"मैं तुम्हारी हत्या करने आया हूँ"–उसने अपनी बात दुहराई"–पर यदि तुम चाहो तो हत्या का कारण भी बता सकता हूँ।"

प्रदीप जी ने उसे सामने पड़ी कुर्सी पर बैठने का इसारा करते हुए कहा–"तशरीफ रखिए !"

"नहीं, मेरे दिमाग में खून चढ़ा है, वह मुझे तब तक शांति से न

बैठने देगा जब तक मैं तुम्हारा खून नहीं कर देता।"–फिर उसने सामने टंगी घड़ी की ओर देखा और बिना कुछ कहे बोला–"मालती की हत्या का समाचार तुमने सुना है ? उस मालती की जो रेडियो पर कई बार गा चुकी थी, जो अपने आकर्षक नृत्यों से भारत के कोने-कोने में नाम पा चुकी थी। वह मालती जिसकी न शादी हो सकी और न जो सुहाग का सुख पा सकी !"

लेखक घबड़ाया सा निस्तब्ध आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। उसे लगता था जैसे उसका शरीर निष्प्राण और जागृति हीन हो रहा है।

वह व्यक्ति दो कदम और आगे आया और प्रदीप जी की आलमारियों में हाथ लगाता हुआ बोला–"इन आलमारियों में भरी पुस्तकों में क्या लिखा है, तुम जानते हो ?" और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह कहता गया–"घबड़ाओ मत प्रदीप जी, मैं तुम्हारा पाठक हूँ। मैंने तुम्हारी सारी कहानियाँ और उपन्यास पढ़ डाले हैं। मेरे घर में तुम्हारे साहित्य की हर पुस्तक मिलेगी। उन्हीं को पढ़कर इन्सानियत की मंजिल छोड़कर हैवान हुआ हूँ। शायद तुम नहीं जानते कथाकर कि मालती का खूनी कौन है ? तुम क्या, संसार का कोई व्यक्ति नहीं जानता ! मेरी मालती चली गई पर उसके जीते जी मैं उसे "मेरी–मालती" न कह सका। तुम्हें अपनी कहानियाँ तो याद होंगी प्रदीप जी, जिनमें प्रेम के कलुषित और बनावटी रंगों को भरकर तुमने हजारों पाठकों को दीवाना बना दिया है। मैं भी दीवाना था, मालती के प्यार का दीवाना। उसे मैं तुम्हारी कहानियों की नायिका के रूप में देखना चाहता था। मैंने किसी आलोचक से सुना था कि एक लेखक स्वयं अनेक कष्टों को झेलकर जो अनुभव प्राप्त करता है उन्हें उदार दानी की तरह वह अपने पाठकों लुटाता है। कहते हैं लेखक सब कुछ साफ लिखता है क्योंकि सत्यं-शिवं और सुन्दरम् के बिना कुछ लिखा ही नहीं जा सकता ! पर यह सब झूठ

है, फरेब है। लेखक से बड़ा झूठा इस दुनियाँ में कोई नहीं।" उसकी आवाज में गहराई थी, तीव्रता थी, एक धड़कन थी जिससे सामने बैठा कलाकार कांप रहा था।

वह आगे कहता गया—"मैं मालती को जी जान से प्यार करता था। रोज उसके पीछे लगता और एक दिन सुनसान में तुम्हारे उपन्यास की नायिका ने नायक को तन-मन अर्पित कर दिया था। पर उस दिन मुझे पता लगा कि तुम्हारी लेखनी व्यावहारिक दृष्टि से कितनी हलकी है, तुम्हारे नायक और नायिका कितने झूठे हैं, बनावटी हैं! उनमें कल्पना के सिवाय सत्य का नाम भी नहीं! मालती की सभ्यता और सुशीलता किससे छिपी थी? शायद उसने कभी तुम्हारी पुस्तकें नही पढ़ीं, उनकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। पर मुझे क्या पता था। मैं तो सभी को अपने जैसा समझता था और मुझे विश्वास था कि जब मैं उससे नायक बनकर प्रणय निवेदन करूँगा तो वह भी नायिका का पार्ट अदा करेगी। पर जानते हो उसने क्या किया?"

प्रदीप जी विस्फारित नेत्रों से उस अनजान व्यक्ति की ओर देख रहे थे, यह सब मानों उनकी समझ के परे हो। इतने में वह जोर से चिल्लाया—"जबाब दो कथाकार।" प्रदीप जी को जैसे किसी ने झकझोर डाला हो—"तुम मेरा उत्तर देने में असमर्थ हो, तो मुझसे ही सुन लो। मालती मुझे तिनके की तरह तिलांजलि देकर भाग गई जैसे उसके सामने मेरी कोई क़ीमत न हो। उस दिन से उसने निकलना बन्द कर दिया और एक दिन मुझे सुनने को मिला कि उसका विवाह हो रहा है। मेरा रोम-रोम विद्रोह कर उठा। मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं उस बेहया को सुखी न रहने दूँगा। यदि उसने मेरा प्रेम संसार उजाड़ा है तो मैं भी उसके संसार को न बसने दूँगा और अन्त में एक दिन उसे अकेला पाकर उस झील के किनारे मैंने उसकी हत्या कर दी। उसके हत्यारे का

पता आज तक कोई न लगा सका पर मेरा खून सिर चढ़कर बोलता है और मैं आज यही बताने आया हूँ कि मालती की हत्या मैंने नहीं परन्तु तुमने की है।"

—"मैंने हत्या ! कभी नहीं, बिलकुल झूठ"–प्रदीप एक दम बड़बड़ा उठे।

"हत्या !"—वह फिर खिलखिलाया–"तुमने हत्या की है। प्रदीप ने हत्या की है, लेखक प्रदीप ने। मैं सारी दुनियाँ को यह बताऊँगा कि मालती का हत्यारा प्रदीप है, लेखक प्रदीप, कथाकार और उपन्यासकार प्रदीप, प्रदीप जी, मानो चाहे न मानो हत्यारे तुम हो ! मालती का खून मैंने नहीं परन्तु मेरे मस्तिष्क में छायी तुम्हारी लेखनी ने किया है। इस तरह की न जाने कितनी हत्यायें तुमने की होंगी। आज मैं उन सबकी जड़ मिटाने आया हूँ। इनका इल्जाम सहने को तैयार हो जाओ।"

प्रदीप जी कुर्सी से घबड़ा कर एक दम उठ बैठे—"बचाओ ! बचाओ !" कि एकाएक पिस्तौल चल पड़ी। प्रदीप ने देखा पिस्तौल तो चल गई पर न तो उसे कहीं चोट लगी है और व कमरे में कहीं धुआँ है। वह व्यक्ति भी गायब हो चुका है। अब उन्हें काटो तो खून नहीं आखिर यह सब क्या था ? क्या मैं सपना देख रहा था ? प्रदीप जी सिर झुका कर टेबल पर बैठ गए, सिर चक्कर खाने लगा। इतने में एकाएक उनके मुँह से निकला–"ओफ ! यह तो मेरी आत्मा थी। आत्मा कभी असत्य नहीं बोलती, तो क्या मैंने सचमुच मालती की हत्या की है !···मैं हत्यारा !" और प्रदीप की कर्म प्रवृत्ति बौद्धिकता से उलझने लगी।

\+ \+ \+

ग्रीष्म-ऋतु के प्रातःकाल की शीतल मंद-मंद लहरें रातरानी की भीनी भीनी खुशबू से सराबोर कथाकार के कमरे में किसी विरहिनी

नायिका की तरह भटक रही थीं और यहाँ गहरे ज्वारसा उमड़ता प्रदीप का मानस व्याकुल हो रहा था। वे आलमारियों से सारी पुस्तकें निकाल कर कमरे के बाहर ढेर लगाने में व्यस्त थे। धीरे-धीरे बालारुण की प्रथम किरणें जब पुस्तकों को चूमने लगी तो लोगों के आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि पुस्तकों में भयंकर आग लगी हुई है। सारी पुस्तकें अमूल्य अरमानों की तरह जल रही हैं और प्रदीप जी सामने खड़े मुसकरा रहे हैं, उनके चेहरे पर शांति के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।

प्रदीप जी अपनी टेबल के पास गए और माता सरस्वती के चित्र को नमन कर बोले—"भगवती वीणापाणि, मैंने अभी तक तुम्हारे साथ बड़ा छल किया है, बड़ा अत्याचार किया है। तुम्हारी ओट में मैंने हजारों हत्यायें कीं पर अब प्रदीप बदल गया है। हत्यारे—प्रदीप की हत्या कल रात्रि को हो चुकी है! अब मैं तुमसे आशीर्वाद चाहता हूँ देवि, कि भविष्य में मैं ऐसी रचनायें कर सकूँ जो भटके मानव को नई प्रेरणा दे सकें, जो कला को पल्लवित कर जीवन-पथ के श्रान्त-पथिकों को शांति-दायिनी छाया दे सकें, जो रचनायें मानव को अभाव और दुखों से ऊपर उठाकर सदा मुसकाने और हँसने की प्रेरणा प्रदान करें।"

इसके बाद फिर कभी किसी को प्रदीप जी की प्रेम-कहानी पढ़ने को नहीं मिली।



प्रेम कहानी



जब से यहाँ आया हूँ न तो कहानी लिख सकता हूँ और न कविता। यह बात मुझे खलती न हो सो नहीं क्योंकि मैं आजकल इतना अधिक सोचने लगा हूँ कि सोचते-सोचते आवश्यकता से अधिक भावुक हो चला हूँ। सोचता भी इसीलिए हूँ कि शायद कहानी का कोई प्लाट उतर आए या गीत की एकाध लड़ी—परन्तु सब निरर्थक सा मालूम होता है। यहाँ सम्पा-दकों के पत्र रोज आते रहते हैं, जिनसे परेशान होकर मैंने पोस्टमैन का रास्ता देखना ही बन्द कर दिया है। फिर भी वह रोज आ ही जाता है, मेरा मन उल्लास से दौड़ पड़ता है शायद प्रकाशन के लिए सुर-

चित रचनाओं का पारिश्रमिक होगा, पर हाथ लगता है वही 'डिमांड-फा'। अब समस्या यह है कि आखिर यह डिमांड कैसे पूरी की जाये। किसी लेखक का दिमाग कोई कल-कारखाना तो नहीं कि किसी भी परिस्थिति में उत्पादन चलता रहे। कभी-कभी तो मुझे अपने आपसे चिढ़ हो जाती है, लगता है मानों मस्तिष्क की ज्ञानेन्द्रियाँ जंग खा गई हों।

लोग कहते हैं यह स्थान साधू-सन्यासियों के लिए बहुत अच्छा है, फिर साहित्यकार तो उनसे एक डिग्री ऊँचा होता है। यह उक्ति कहाँ तक ठीक है और आज के साहित्यकार पर कहाँ तक लागू होती है, मैं नहीं कह सकता पर इतना अवश्य जानता हूँ कि एक साहित्यकार के लिए कोई स्थान बुरा नहीं है।

उस दिन बिस्तर से उठते ही मैंने निश्चय किया कि आज कुछ न कुछ अवश्य लिखूँगा। बस, कागज-कलम लेकर सिर मारने बैठ गया। मौसम भी बड़ा सुहावना था। सूरज पूरब की खिड़की खोलकर सुनहली चादर ओढ़े झाँक रहा था। चारों ओर अजीब मस्ती और उल्लास दिखाई देता था। बसन्त ने एक नवोदित बालिका के यौवन की भाँति प्रकृति के अङ्ग-अङ्ग में कौमार्य भरी मादकता और मस्ती बिखेर दी थी। एक ओर से समीर अपनी इठलाती और बलखाती जवानी का मनमाना सौरभ लुटा रहा था तो दूसरी ओर कोयल आम की डाली से कुहक्-कुहक् कर नया संदेश दे रही थी। अब क्या लिखूँ? यह एक बड़ी उलझन जो अब तक मेरे सामने थी, सुलझ गई! बसन्त की इस सत-रङ्गी बहार में 'प्रेम-कहानी' सबसे उपयुक्त बैठेगी—ऐसा विचार एकदम मेरे मन में आगया। ठीक भी तो है, जब चारों ओर खुशी ही खुशी है तो यदि मैं अपना रोना लेकर बैठूँ तो कौन सुनने चला है! मस्तिष्क ने भी साथ दिया और जो जङ्ग खाये लोहे की तरह पड़ा था, एकाएक तेज तलवार की तरह चल पड़ा और प्रेम की सुन्दर-सुन्दर व्याख्या करने में

अपने को खो बैठा। वह उस प्रेम की व्याख्या करने लगा जो अश्रुत-लोक के द्वार उद्घाटित कर देता है और मृत्यु का पर्दा हटाकर दिव्य-लोक के अनिर्वचनीय सौन्दर्य की झाँकी मन की आँखों के सामने झलका देता है। वह प्रेम, जो देवलोक से भेजे गए देवताओं का अमर-प्रसाद है जिसके बिना मर्त्यलोक की इस कठोर शैय्या पर विषमता के पहाड़ ढोता पलभर भी जीवित नहीं रह सकता।............

बस, दरिया के अजस्र-प्रवाह की भाँति, वर्षात् में निखरी हुई जवानी की तरह मेरी विचार-धारा बह रही थी। इसी समय श्रीमती जी एक सताई हुई नागिन की तरह मेरे पास आ धमकी—"कुछ घर का भी ख्याल है कवि जी! सुबह से गृहस्थी का कुछ काम-धाम करना तो दूर रहा, लगे अपनी मूर्खता की धुन-पीटने!" श्रीमती जी की इन बातों ने मेरा पारा गरम कर दिया पर उस समय कुछ भी कहना सम्भवतः मेरी सुकोमल भावनाओं में एक अवरोध सा ला देता, मैं गरल की भाँति अपने गुस्से को पीकर चुपचाप लिखवा रहा। पर श्रीमती जी को चैन कहाँ—मैं कब से खड़ी हूँ, तुम्हारी नौकरानी थोड़े हूँ। मैं तो यह साफ-साफ कहने आयी हूँ कि घर में चाय के लिए शक्कर नहीं है।"

चाय के लिए शक्कर नहीं है, यह भी अच्छी फरियाद है—"नहीं है तो मँगा लो न—" आखिर मुझे कहना ही पड़ा।

"कहाँ से मँगा लूँ, घर में तो एक पैसा भी नहीं है—" मैं एकदम चौंक पड़ा—"एक हफ्ते पहिले ही तो मैंने १००) दिए थे और आज कहती हो कि पैसा नहीं है, तो आखिर पैसे गए कहाँ?"

"मैं जैसे तुम्हारे पैसे खा गई, कितना कर्जा था—यह भी कभी पूछा है?"

"अच्छा भाई! फिर देखेंगे, अभी तो मोहन बाबू के घर से माँग लाओ—" मैंने धीरे से कहा।

श्रीमती जी को इन नर्म वचनों पर भी दया न आई—"मैं कोई भिखमङ्गी थोड़े हूँ कि सुबह हुई और चली मांगने। रोज-रोज के मांगने से तो मैं बाज आई। एक दिन चाय मांगकर लाई, एक दिन मिर्ची और कल आटा, अब आज शक्कर मांगने जाऊँ। मुझसे यह न होगा, तुम चाहते हो मैं अपनी नाक काट कर रख दूँ।" यह सब सुनकर मुझे अपनी कलम रखही देना पड़ा। इससे शायद श्रीमती जी को बड़ा सन्तोष मिला, पास आकर बोलीं—"यह लिखना-पढ़ना तो होता रहेगा। पहिले खाने-पीने की फिकर तो करो। घर में न शक्कर है और न लकड़ी, आटा भी खतम हो गया है। दफ्तर क्या खाकर जाओगे, इसका भी कुछ ख्याल है!"

गृहस्थी का यह वृत्तान्त सुनकर मैं घबड़ा उठा। मुझे लगा जैसे एक साहित्यकार को विवाह करने का अधिकार ही नहीं है और यदि वह विवाह करता है तो अपनी आत्मा के साथ अन्याय तो करता ही है, साथ ही एक स्त्री के जीवन को बर्बाद कर पाप कमाता है। अन्त में मैंने कहा—"आखिर तुम्हीं सोचो देवी, मैं पैसा कहाँ से लाऊँ। मैंने एक हफ्ते पहिले ही तो १००) दिए थे, अभी तो तीन हफ्ते गुजारना है।"

"पर तुम्हीं बताओ कि मैं पैसे कहाँ से लाऊँ, कुछ कमाने तो जाती नहीं। रहा १००) का हिसाब सो मैंने कहा कि कुछ कर्ज-वर्ज का भी ख्याल है। फिर मुझे करना क्या है, तुम्हीं भूखे रहोगे।"

लो अभी तक केवल चाय ही न मिलने का भय था, परन्तु अब तो रोटी का दूसरा प्रश्न खड़ा हो गया। देवी जी अपनी आन पर अलग अड़ी रहीं तब मैं भी आखिर कहाँ तक शांत रहता झल्ला ही पड़ा और बोल उठा—"अच्छा सौ रुपये का मुझे पाई-पाई हिसाब दो।"

"क्या मैं हिसाब लिखकर रखती हूँ?"—कहकर देवी जी पहिले

तो टालना चाहा, परन्तु मेरी आदत से परिचित होने के कारण वे हिसाब देने लगीं। हिसाब देते उन्हें देर न लगी। वह तो मानों उनकी जिह्वा में लिखा था। पूरे सौ रुपये का योग बताने के बाद श्रीमती जी ने कहा—"अब रहा इन रुपयों में आना-पैसे का हिसाब सो तुम्हीं जानो। मैं तो बँधे रुपये तुम्हें देती हूँ, उनके आने-पैसों का क्या हुआ सो मुझे क्या मालूम ?" बात भी ठीक है, आखिर बाजार करने मुझे ही जाना पड़ता है, तब आने पाई का हिसाब मेरे सिवाय और कौन दे सकता है।

इस बक-झक में १५-२० मिनिट समाप्त हो चुके थे। सामने टँगी घड़ी १० की घंटी बजा रही थी—अभी नहाना है, धोना है फिर खाना और तब..........। लेकिन अभी तो खाने की समस्या ही नहीं सुलझी। हाँ, चाय न पिऊँ तो चल जायगा, परन्तु खाये बिना तो नहीं चल सकता। करूँ क्या ? यह एक ऐसी समस्या थी जिसका सुलझना बहुत कठिन हो गया था। पैसा कोई पानी की झिर तो नहीं कि मनमाना झिरता चला जाय। एक ओर तो अधूरी प्रेम-कहानी लिखी पड़ी थी और दूसरी ओर गृहस्थी की इन उलझनों में उलझ रहा था। इन दोनों की रस्साकशी के बीच पड़ा मेरा मन बुरी तरह फँसा था। मुझे लगता जैसे मैं एक भारी जाल में फँस गया हूँ। एक ओर साहित्य-साधना है जिसे नहीं छोड़ा जा सकता तो दूसरी ओर रोटी की समस्या जो उससे भी एक कदम आगे बढ़ जाती है। आज भारतवर्ष का हर कलाकार कला और जीवन के इस विचित्र भँवर में पड़ा अपने आप छटपटा रहा है। उसके जीवन में कितना दर्द है, कितनी कसक है परन्तु फिर भी वह उन आँसुओं से कला को सींचता रहता है केवल इसलिए कि कला उसके लिए नशा है और जीवन धोखा। शायद नशे की इस मस्ती में वह जीवन के

धोखे को भुला देना चाहता है। बिना नशे के आनन्द ही नहीं और इसलिए जिस जीवनमें कला नहीं, वह कूड़े का ढेर है। कला की सहायता से ही जीवन फूल उठता है। इस तरह कला और जीवन का समन्वय ही एक कसौटी है, परन्तु कलाकार का यह ज्ञान सत्य होते हुए भी मृग तृष्णा की तरह उसे धोखा देता है। वह तो मानों सहारा के विशाल मरुस्थल के मध्य फँसा अपना रास्ता नहीं खोज पाता। एक ओर तो वह कला का निर्माण कर सृष्टि में सौन्दर्य प्रसार करता है तो दूसरी ओर जीवन के पग-पग पर आने वाली कठिनाइयों के सामने नाचने लगा और मैं एक संज्ञाहीन प्राणी की अपलक शून्य की ओर निहारता रहा। टेबल पर रखी प्रेम कहानी अधिक देर न टिक सकी। हवाके एक झोके ने न जाने उसे कहाँ फेंक दिया।

तभी आकर चपरासी ने खबर दी कि कार्यालय का समय हो गया है और साहब ने मुझे इसी समय बुलाया है। मैं उठा और उसी स्थिति में चुपचाप कार्यालय की ओर चल पड़ा। काश! कोई इस मर्म को पहिचान सकता कि एक भूखा कलाकार अपने अरमानों की होली जलाकर जीवन का भार ढोने कार्यालय की ओर चला जा रहा है।



भिखमंगों की बस्ती



मैं जानता हूँ तुम्हें कहानियाँ अच्छी लगती है और तुम सब कुछ छोड़कर उन्हें सुनने बैठ जाते हो क्योंकि हर कहानियों में प्याज के छिलके हुआ करते हैं और ज्यों-ज्यों उन छिलकों को छीलते जाओ प्याज की तरह नरमी तथा सफेदी मिलती जायगी, तब तुम असल अन्तरात्मा की तह तक पहुँचोगे। परन्तु मैं तुम्हें आज जो कहानी सुनाने जा रहा हूँ वह इससे बिलकुल उल्टी है, ज्यों-ज्यों तुम आगे बढ़ोगे, वह कठोर होती जायगी। यह घटना भी तो कठोर है जिसका मुझसे पत्रकार के लिए कोई महत्व नहीं है। हर पत्रकार के लिए हर भारी घटना साधारण होती है क्योंकि

देश-विदेश की बड़ी-बड़ी खतरनाक घटनाओं से उसे सामना करना पड़ता है। शायद इसीलिए घटनाओं को भूलना उसके लिए अनिवार्य भी हो गया है। हर नई घटना को एक बार छाप देने के बाद वह पुरानी हो जाती है और फिर दूसरे दिन उसे भूलकर पत्रकार अपनी गिद्ध जैसी आँखों से और-और घटनाओं को ढूँढ़ने लगता है। मानों घटनायें बनाना और मिटाना ही एक पत्रकार का जीवन हो गया है, बिना ऐसा किये उसका अस्तित्व भी नहीं।

मैं भी एक पत्रकार हूँ परन्तु एक अजीब-सी बात है मुझमें—घटनायें बनाने की आदत तो जरूर है पर मुझमें भूलने की आदत नहीं। मैं बिलकुल सत्य कहता हूँ, लाख प्रयत्न करने के बाद भी उन्हें भुलाना कठिन हो गया है, पता नहीं क्यों? पर मेरा एक साथी कहता कि लेखक और पत्रकार में यही अन्तर है। घटनायें दोनों ही बनाते हैं परन्तु पत्रकार उन्हें बनाकर मिटा देता है, लेखक उन्हें कभी मिटने नहीं देता। वह सदा ताजा रखता है और कई वर्षों पहिले की घटनाओं से ताजी घटनाओं का मिश्रण कर एक नई चीज़ बना देता है, ठीक वैसे ही जैसे एक वैज्ञानिक दो-चार तत्वों के योग से एक बिलकुल नया तत्व बना देता है।

बस, यही मेरी कहानी की भूमिका है और इसी के सहारे मैं आगे बढ़ूँगा। रात को कोई दस बजा होगा। मैं एक पत्रकार की हैसियत से यूनिवर्सिटी कन्सर्ट देखकर लौट रहा था। कन्सर्ट अभी समाप्त नहीं हुआ था परन्तु मुझे वह कुछ अच्छा न लगा, इससे उठकर आ गया था। भूख भी लगी थी और पत्नी का भी भय था क्योंकि जब भी मैं देर से घर आता हूँ, वह झल्लाती भी खूब है। खैर, यह तो अपने-अपने घर की बात है। मैं बता रहा था कि मैं कन्सर्ट से लौट रहा था। जब बड़ी-बृज के पास पहुँचा तो तो वहाँ पुल के दोनों ओर

बीच के थोड़े से फुटपाथ में भिखमंगे बैठे दिखाई दिए। उन्हें देखकर लगता था मानों वह भिखमंगों की बस्ती हो। बात भी ठीक थी। एक बस्ती के लिए जितनी बातों की जरूरत होती है, वे सब वहाँ विद्यमान थीं। मेरा मतलब वहाँ कई प्रकार के लोग थे—बूढ़े भी, बच्चे भी और जवान भी। हट्टे-कट्टे से दिखनेवाले जमामर्द और वे हाथ पैर के कलम किए वृक्ष की तरह भी। वहाँ औरतें भी थीं, मर्द भी और शायद दो एक ऐसे भी रहे होंगे जो न औरत थे और न मर्द। हिन्दी में जिनके लिए कोई लिङ्ग नहीं है। ये सब भिखमंगे थे तो हिन्दुस्थान के पर एक प्रान्त के नहीं। माफ कीजिए, अब प्रान्त को जगह राज्य हो गया है। जी हाँ, एक राज्य के नहीं, कई राज्यों का मिश्रण था। यह बहुत कुछ उनकी शकल देखकर और बहुत कुछ बोली से पहिचान लिया जा सकता था। जाति की बात जाने दीजिए। उसका अन्दाज लगाना कठिन है क्योंकि उस छोटे से गाँव में साम्यवाद का राज्य था, इससे उनकी जाति और हैसियत की चर्चा मैं नहीं कर सकता। यही बात धर्म के विषय में भी थी क्योंकि जब अर्थशास्त्र जिन्दकी के दर्वाजे पर आ धमकता है तब धर्म पीछे से भाग उठता है, इसीसे उनका कोई धर्म नहीं था और वह एक आदर्श साम्यवादी ग्राम था। हमारी 'वादी राजनैतिक इससे अच्छा सबक सीख सकते हैं।

ये सारे लोग बड़े खुश थे और बड़ी दिलचस्पी से अपने काम में लगे थे। औरतें खाना पका रही थीं, कहीं कहीं मर्द भी पका रहे थे, सड़क की फुटपाथों पर खाना! बेहाथ पैर के मर्द और औरत चार-चकों की गाड़ी में बैठे गाना गा रहे थे। कभी कभी खाना पकाने वालों के मुँह से कोई गीत निकल आता था। क्या गा रहे थे मैं नहीं कह सकता क्योंकि वहाँ भिन्न-भिन्न जुबानों का ऐसा अजब सम्मेलन था कि

साफ कोई भी जुबान सुनाई नहीं दे रही थी। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता था कि वहाँ मद्रासी, बङ्गाली, गुजराती, मराठी, हिन्दी, कन्नड़ और साथ में अंग्रेज़ी भी अवश्य थी। अंग्रेजी गाने में कहीं-कहीं मिल्टन की टूटी-फूटी लकीर सुनाई पड़ती थी, हिन्दी में तो शायद गाने ही नहीं हैं, वे हिन्दुस्थानी में फिल्मी गाने गा रहे थे। एक ओर कुछ हट्टे-कट्टे मर्द इकट्ठे होकर बीच में आग जलाये बैठे थे और सब मिलकर खुशी का गीत गा रहे थे। उनके बीच में एक ढोलक भी थी, शायद भीख मांगने की ढोलक! बीच-बीच में वह बज उठती और वे सब झूम उठते, सङ्गीत था या नहीं यह मैं नहीं कह सकता, इसे कोई सङ्गीतज्ञ ही बता सकता है; परन्तु भाव जरूर गहरे थे, लगता था जैसे किसी ने गूदड़ी पर सुन्दर सतरञ्जी बिछाकर रख दी हो!

पुल के बाहर सड़क के बाजू से एक बुढ़िया लाठी लिए खड़ी थी मानों वह उनकी जाति के बाहर हो या उसे जाति से निर्वासित कर दिया गया हो। वह इतनी रात को भी भीख मांग रही थी। जब मेरी साइकिल उसके पास से गुजरने लगी तो वह सामने आकर खड़ी हो गई। मुझे साइकिल से उतर जाना पड़ा पर अपनी गुस्सा को रोक न सका। "क्या मरना है बुढ़िया!"

"मौत मिल जाती तो क्या अच्छा होता बाबू! पर पाप के फल भोगने जो बदे हैं, तकदीर भी साथ नहीं देती!" उसकी आवाज में बेहद कड़ुआपन था, बेहद खुमारी थी—ठीक वैसेही जैसी उसकी सिकुड़ी देह में थी। साथ ही उन शब्दों में वजन भी खूब था—शायद उतना ही जितना उसके सन जैसे पके बालों में हो।

"तो इतनी रात को भीख क्यों मांगती है?" मैंने पूछा।

"तो फिर क्या करूँ? दिन भर से एक पैसा भी नहीं मिला, आज कल लोग भीख भी सूरत शकल देखकर देने लगे हैं। मेरे पास यही

एक जवान औरत भी भीख माँगती थी। उसने दिनभर खूब कमाया, और अभी थोड़ी देर पहिले एक बाबू के साथ चली गई। वह बाबू उससे बड़े प्यार से बोला—"भीख मांगना तुझ जैसे हसीनों का काम नहीं है।" फिर मेरी ओर इशारा कर कहने लगा—"इन्हें भीख माँगने दे, तू काहे को मरती है?" मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई बाबू—यह सुनकर, जमाना आँखों के देखते-देखते बदल गया।" इसके बाद बुढ़िया मेरे उत्तर की बिना कुछ प्रतीक्षा किए कहती गई—"तुम सुन रहे हो इसीसे बताती हूँ। उमर एकसी किसी की नहीं रहती। जवानी सुख से बीती तो बुढ़ापे का दुःख कौन उठावे! मेरा एक बेटा है—यहीं उस पुल के नीचे....।"

"क्या?"—मैंने रोककर पूछा—"उस पुल के नीचे तुम्हारा बेटा और तुम यहाँ भीख!....तो क्या वह लङ्गड़ा...?"

"नहीं बाबू! यह लङ्गड़ा, लूला नहीं खासा जवान पट्ठा है। वह देखो, उन गाने वालों के साथ बैठा जोर-जोर से ढोलक पीट रहा है। हाँ...वही मेरा सुक्खुआ है। मेरा प्यारा एक मात्र बेटा, परन्तु मैं उसके पास नहीं जा सकती, दुलार भरा हाथ फेरकर माता की ममतामयी प्यास नहीं बुझा सकती क्योंकि वह आदमी नहीं शैतान है। इसकी की एक कहानी है, बहुत लम्बी पर तुम्हें छोटे में बताऊँगी। एक जमाना था, हम लोग पास के देहातमें रहते थे, हालत तो कुछ अच्छी न थी पर दोनों वक्त पेटभर तो खा लेते थे।" वे मजूरी करते थे, मैं उसे मजूरी ही करूँगी क्योंकि महीने में इने गिने रुपये तनख्वाह में मिलते थे जिससे किसी तरह हम लोग गुजारा कर पाते, इसीसे सुक्खुआ को कुछ न पढ़ा सके। अपढ़ मनुष्य सचमुच इन्सानियत के दर्वाजे से बाहर हो हैवान बन जाता है। यही बात उसके साथ हुई। गाँव के लोफरों से मिलकर वह लोफर हो गया। वह देखो, जितने लोग

मुआल को घेरे बैठे गा रहे हैं, सब इसी गाँव के हैं–यही लोफरों का गुट है। इन्हीं सबने मिलकर, जिसमें मेरा बेटा भी शामिल था, उस रईस का खून किया, जिसके यहाँ 'वे' नौकरी करते थे और जब 'वे' अपने मालिक को बचाने दौड़े तो मेरे बेटे ने ही उनका खून कर दिया। आखिर पुलिस ने इन सबको पकड़ लिया और अब सात-सात बरस की जेल काटकर लौटे हैं। जेल से लौटने के बाद तो वह और भी बेहूदा बन गया है। क्यों बाबू यहाँ के जेल काहे के लिए बनाए गए हैं?—सुधार के लिए या बरबाद करने के लिए? वह जेल से कुछ भी अच्छाई सीख कर नहीं लौटा बल्कि अब इतना मूर्ख बन गया है कि मैं कभी भी उसके पास नहीं जा सकती, उसके दुःख-दर्द में शामिल नहीं हो सकती। एक बार जेल जाने के बाद उसकी हिम्मत खूब बढ़ गई है। शायद इसी से वह मस्त भी खूब रहता है। इन लोफरों का धन्धा ही निराला है। भीख के बहाने चोरी चमारी करना तो रोज की बात है। लगता है यह भिखारी का वेश खुफिया-पुलिस का काम देता है।"

"ऐसी बात है? तो मैं कल ही इसका भंडाफोड़ किए देता हूँ। अपने पेपर में छाप कर इन्हें पुलिस को पकड़ा दूँगा। अब मैं तुम्हारे बेटे को इंसानियत सिखा दूँगा।"

"तुम इन्सानियत नहीं सिखा सकते बाबू, यह तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर है!....पर भगवान के लिए माफ कर दो। इसे तुम अखबार में मत छापना आखिर है तो मेरा बेटा ही। फिर उस पुल के नीचे देखो, कितने लूलें, लंगड़े, बूढ़े अन्धे बैठे वे, मुझ बुढ़िया को देखो जो काम ढूँढ़ते मर गई पर न पा सकी क्योंकि अब मैं हसीन नहीं रही। ये अपंग कैसे अपना पेट चलायेंगे, माफ कर दो बाबू, मुझे नहीं मालूम था कि तुम अखबार वाले हो, तुम भी खुफिया पुलिस हो....मेरे बेटे की

तरह....'' और उसने गिड़गिड़ाते हुये पैर पकड़ लिए। आखिर मुझे अखबार में न छापने का वचन देना ही पड़ा।

× ×

सामने तारकोल की सपाट सड़क थी और काफी रात में सरसराती मेरी साइकिल बढ़ती जा रही थी। बुढ़िया की कहानी तब भी स्वप्नों की तरह आँखों के सामने झूल रही थी–वह लोफरों का गैंग है, जरूर पेपर में छापूँगा। चोरी करता है, डाका डालता है, भिखारी के भेष में। पर मुझे फिर याद आ गया–मैंने बुढ़िया को वचन दिया है, यदि मैं उसे तोड़ूँगा तो उसके अरमान टूट जावेंगे, मानवता से उसे घृणा हो जायगी। अब मैं क्या करूँ–वचन निबाहूँ या इस राज का भंडाफोड़ कर देश की रक्षा करूँ! पर देश की रक्षा कैसी? आखिर ये भीख क्यों मांगते हैं, इन्हें क्यों भीख मागने दिया जाता है। इंगलिस्तान में भीख मांगना कानूनन अपराध है। वहाँ भिखमंगे ही क्या, बे घरबार वाले तक अपराधी समझे जाते हैं, उन्हें जेल भेज दिया जाता है और वहाँ से सिखा-पढ़ा कर बाहर किया जाता है ताकि वे फिर न पकड़े जायें! परंतु हमारे देश की बात निराली है। यहाँ फुटपाथों में जब ऐसे हजारों लोगों का काम चलता है तब क्या जरूरत है कि इसे भी एक समस्या का रूप देकर सरकार अपने सिर पर व्यर्थ की झंझट खड़ी कर ले। और देश के पूँजीपति...! उनकी बात जाने दीजिए, यदि सुबह से किसी भिखमंगे की शकल दिख गई तो बड़ा अपशकुन हो गया। जाने सारा दिन कैसे बीतता है? बड़े-बड़े समारोहों में खबर मिलते ही ये भिखमंगे मक्खी की तरह दौड़ पड़ते हैं–पर उनकी उपस्थिति आँख में कनी की तरह खटकती है।

कुछ महीने पहले की एक घटना मुझे अभी तक याद है। मैं एक पत्रकार की हैसियत से एक समारोह में भाग लेने गया था। समारोह

शाही ढंग का था, आगन्तुक व्यक्तियों के स्वागतार्थ वहाँ किसी चीज की कमी नहीं थी, सुर-साधकों को इस 'ड्राइ-क्षेत्र' में भी इसकी छूट थी। आए भी तो बड़े-बड़े लोग थे—सेठ, साहूकार...., ..., और साथ ही पत्रकार भी। पत्रकार इसलिए कि वे इस समारोह की खबर बड़े-बड़े अक्षरों में अपने अखबार के पन्नों में छापेंगे, तब सब दूर वाहवाही हो जायगी और सारी गल्तियाँ पॉलिश की तरह ढक जायेंगी।

जब समारोह समाप्त हुआ और बहु प्रतिष्ठित अतिथिगण बाहर निकले तो हाथ-पैर फैलाये, आँखें फाड़े भिखमँगों की एक कतार खड़ी थी, खासी भीड़ होगई थी—"यह क्या है मोती? तू नहीं जानता कि—"

"जानता हूँ हुजूर!"—सिर झुकाकर मोती ने उत्तर दिया—

"पर लाख मना करने पर भी ये भिखमंगे न माने।"

"तो लाठी से काम लिया होता, आखिर कुत्ते हैं न—"

और वहाँ लाठी चल गई। दो-एक के सिर से खून निकला—कोई रोता, कराहता, चीखता भी रहा, पर भीड़ बिखर गई। सारे अतिथि हँसते-हँसते अपनी-अपनी कारों में चले गए। मैं भिखमँगों की यह घटना पेपर में न छाप सका! मैं क्या कोई पत्रकार न छाप सका, मुँह जो बन्द कर दिया गया था।

मेरी साइकिल आगे बढ़ती जा रही थी। तारकोल की सड़क सीमेंट रोड में बदल चुकी थी। सामने सेठ मूलचन्द के यहाँ से शहनाई की आवाज सुनाई दे रही थी। तभी मुझे याद आया, यहाँ भी तो जाना है। बस, साइकिल मोड़ दी। कम्पाउन्ड में पैर रखते ही इत्र, तेल आदि सुगन्धित द्रवों की बहार रन्ध्रों से होती शरीर के अन्दर पहुँचकर अनुपम आनन्द देने लगी। सेठ जी मखमली गद्दों में बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उनका अलसेशियन डाग उनके बाजू में बैठा

नींद में मग्न था। सारे शहर में उसकी समता का कुत्ता नहीं है। दूसरे कुत्ते उसे देखकर पूँछ दबाकर भाग जाते हैं--शायद इसलिए कि जब कोई इन्सान, इन्सानियत से नीचे गिर जाता है तब उसे जानवर की संज्ञा दी जाती है. और जब किसी जानवर में इन्सानियत आ जाती है तब वे जानवर भी उसे इन्सानियत की संज्ञा देकर घृणा करने लगते हैं। आखिर समाज की मर्यादा का भी कुछ मूल्य होता है।

कुत्ते की निश्चिन्तता जाने क्यों मेरे दिल में खटकी और कुछ बहाना कर मैं लौट पड़ा। भावनायें सावन की घटाओं की तरह सारे मानस-पटल पर छा गईं और मेरी बौद्धिकता उनके बीच लड़खड़ाती रास्ता ढूँढ़ने लगी। तो आखिर यह विषमता कब तक चलेगी ?

इससे तो पुल के नीचे की ही बस्ती अच्छी, जहाँ कोई अन्तर ही नहीं, जो लूट-मार, चोरी-चपाटी से ही सही परन्तु रईसों को रास्ते पर तो लगाते हैं....। पर नहीं, पुल के बाहर तो बूढ़ी की कातर-आवाज थी। वह तो साम्यवाद की रक्षा के लिए गिड़गिड़ा रही थी, मेरे पैरों के नीचे गिरी थी।.......तब ऐसा साम्यवाद भी किस काम का जो लूट-खसोट में पला हो! तो क्या यह भौतिकवाद........! नहीं, वह तो इन्सानियत का गला-घोंटता है, तब चाहिए क्या ?........

और मेरी साइकिल इलेक्ट्रिक-पोल से-एकाएक जा टकराई। मैं गिर पड़ा। दो चार कारें निकल गईं तब लकड़ी के चिराग वाले कार-खाने से एक मजदूर दौड़ा--"ज्यादा लग गया है, बाबू!"

नहीं........लगा नहीं, मैं तो साम्यवाद और भौतिकवाद की टक्कर खाकर गिरा हूँ। पर मुझे सामने के उस घर तक तो भेज दो, सिर चक्कर काट रहा है।



कला की साधना

अधारताल के एक्सपेरीमेंटल फार्म के सामने रजत-श्वेताम्बराच्छादित वह भव्य-भवन चाँदनी से रंग क्रीड़ा में मस्त था और चाँदनी भी कभी मेघ की आड़ में छिप जाती, जुही के घने पत्तों से झाँकती और कभी सामने आकर हँस देती। भवन का पृष्ठभाग यंत्र-तत्र विद्युत-शिखा से-आलोकित था। चारों ओर एक निराला पन था, मस्ती थी। कोकिला अपने सुरीले कंठ से उस भवन को गुंजार रही थी और गीत के साथ गिरती-उठती घुंघरू की तरह 'छुम छुम,' शीतल समीरण के मन्द-मन्द झोंके एक ओर से आकर उन्हें बहा ले जाते और बाहर बिखेर देते थे। कला-



नृत्य-मय कोकिला के गीतों से विभोर वह भवन मानों झूम-झूमकर स्वयं नृत्य में तल्लीन हो रहा था। सारा-संसार निन्द्रा देवी की गोद में शान्ति की श्वासें ले रहा था। भवन के सामने फूस के एक झोपड़े में बैठा वह कलाकार मृत्तिका-पिण्ड की गठन बनाने में अपने को बिलकुल भुला चुका था। कोकिला का मधुर संगीत सुनकर सहसा कलाकार स्तब्ध रह गया। वह समझ न सका आखिर इधर इतनी रात्रि में और कौन कला की साधना में इतना व्यस्त है। कभी वह सामने मृतपिण्ड निर्मित श्रीकृष्ण की प्रतिमा देखकर सोच उठता कि शायद गोकुलनन्द ही अपनी अपनी मुरलिका से रास-मग्न है, लेकिन जब वह अधिक ध्यान से उस प्रतिमा को देखता तो उसे अपनी भूल तत्काल ज्ञात हो जाती।

यह दरिद्र कलाकार इस नन्हें से फूस के झोपड़े में दिन-रात अपनी मस्ती में ही मस्त रहता। नित्य नवीन सुन्दर-सुन्दर मूर्तियों को गढ़ता जिन्हें देखकर दर्शक मुग्ध हो जाते और इस भव्य-भवन के वैभव में पली कोकिला सदा नित्य निरत रहती। गोपीभाव की श्रृङ्गारमयी मुद्रा में भगवान् कृष्ण का आह्वान करती हुई—कोकिला का वह नृत्य अत्यन्त मन-मोहक-मालूम होता। काश! विश्व में कोई कोकिला के नृत्य की समता कर सकता! इधर कलाकार की कला भी कोकिला की नृत्य-कला से किसी तरह कम न थी। दोनों हो अपनी-अपनी कला की उपासना 'स्वान्तः सुखाय' करते। लेकिन कोकिला राजवैभव के बीच पली थी तो कलाकार हेमन्तकुमार सदा ही दरिद्रता की गोद में पलता रहा। कला की अपरिमित देन भी उसे पेटभर भोजन दे सकने में समर्थ नहीं हो सकी। हेमन्तकुमार कई दिनों से कला की एक उत्कृष्ट प्रसाधिका का निर्माण करना चाहता था, जिसमें वह अपने कल्पित मनोराज्य को सीधा उतार सके। कोकिला के इस नृत्य

संगीत से कलाकार हेमन्तकुमार को बड़ी सहायता मिली। बस, तत्काल ही मिट्टी के साथ, बच्चों की नाईं भिड़ पड़ा।

+ + +

अम्बर पनघट में ताराघटों को डुबोती हुई ऊषा-नागरी शनैः शनैः प्रतीची के अञ्चल में हँसने लगी। सारा उदयाचल झींगुर रंग सा हो गया मानों व्रज का कन्हैया वहाँ भूल पड़ा हो और सखियाँ उसके स्वागतार्थ उसे घेरकर मुट्ठीभर गुलाल पवन में उड़ा रही हों। कोकिला का श्रम मृदु आलस पाकर अभी तक विश्राम कर रहा था लेकिन कलाकार अभी भी चाव के साथ अपने कार्य में संलग्न था। देखते-देखते कलाकार की इस कृति में सच्चे अनुभूति की सहानुभूति मय अभिव्यक्ति निर्मल हृदय निर्झर बन झरने लगी। कलाकार की चिर-तृष्णा साकार होकर सामने नाच उठी। उसे जो कहना था, वह कह चुका, कटाक्ष की सीमा के परे पहुँच गया। क्षणभर में ही वह शान्त एकान्त स्थल कोलाहल से भर गया। दर्शकों की भीड़ कलाकार की इस सफलता को मन्त्र मुग्ध देखने लगी। सभी उसे पाने की इच्छा करने लगे। आखिर करते क्यों नहीं? उसका प्रशस्त वक्षस्थल, उन्नत, ललाट, सुन्दर चञ्चल नयन, कल-कुंतल केशों की लहरियों से पूरित मुक्तामणि सी दंतावलि, किसलय से रक्तिम होठों पर विश्राम लेती अरुण की एक किरण को भी अम्लान करती हुई वह मुस्कान और आह्वान-भाव मुद्रा में नृत्य-निरत वह प्रसाधिका मानों साक्षात् नृत्य कर रही हो। इन सबके ऊपर प्रसाधिका का सामंजस्य पूर्ण सूक्ष्म परिधान अपनी श्री से हिमकर को भी लज्जित कर रहा था।

इसी समय परमश्रेष्ठ नगरपति भीड़ को चीरते हुए आगे आए और प्रतिमा में हाथ लगाकर बोले—"कलाकार, तुमने तो पाषाणों में प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। कहो, इस प्रतिमा का मूल्य क्या है?"

"क्षमा भन्ते ! प्रतिमा को स्पर्शकर अपवित्र न करिए। वह आपके योग्य नहीं, वह वैभव में नहीं पली अपितु झोपड़ियों और काँटों के बीच फूली कला है। कला का मूल्य नहीं देव ! प्रसाधिका विक्रय–हेतु नहीं बनाई गई।"

"विचार ले कलाकार, मनचाही कीमत दूँगा ! कदाचित ही ऐसी सुन्दरी मैंने जीवन में देखी हो !"

"छिः, सुन्दरता को तुम नष्ट कर देना चाहते हो ! तुमने ऐसी सुन्दरी जीवन में नहीं देखी, इसीलिए प्रसाधिका चाहिए न ?"—और कलाकार ने ठहाका मारकर हँस दिया। उदास नगरपति आगे चला गया। इसी तरह जाने कितने वहाँ से आए और चले गये। प्रत्येक बार कलाकार एक ठहाका मारकर हँस देता और मौन रह जाता। लोग उसे पागल कहते और वास्तव में वह पागल ही तो था, जिसे न खाने की चिन्ता और न सोने की, न कपड़ों की और न शरीर की ही। जिस समय मूर्ति बनाने लग जाता उसे दिन-रात की भी परवाह न रहती। कौन उसकी प्रसंशा कर रहा है, कौन उसे गाली दे रहा है—इसे सुनने की भी उसे चिन्ता न थी। क्षणभर में ही उस कला और कलाकार की प्रसंशा करते हुए सारा जन समुदाय चल दिया !

× ×

कलाकार अभी भी विस्फारित नेत्रों से उस नूतन प्रसाधिका की ओर देख रहा था, फिर तत्काल ही मानों उसके तृषित नेत्रों की चिर-तृष्णा तृप्त हो गई हो, वह अर्धोन्मीलित नेत्रों से हथेलियों को मिलाकर कहने लगा—"हे देवि ! आशीर्वाद दो, कला को पल्लवित कर जीवन-पथ के श्रांत पथिकों को मैं शांति-दायिनी छाया प्रदान कर सकूँ। मेरा जीवन......" सहसा सामने दर्पण पर कलाकार को एक अस्पष्ट सा प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह अवाक् रह गया ! उसकी हथेलियाँ खुल

गई। लौटकर उसने ज्योंही देखा वह स्तब्ध रह गया। उसकी कला आज साक्षात् सामने खड़ी हँस रही थी। उसकी कल्पना स्वर्ण-पंखों से उड़ान भरती मानों खड़ी थी और कोकिला भी अपनी साक्षात् मूर्ति देखकर एकदम चकित थी। सहसा उसकी दृष्टि आह्वान मुद्रा की गिरती-उठती नूपुरों की ओर पड़ी। कलरात्रि का नृत्य उसके नेत्रों में उतरने लगा। वह इतनी विभोर हो गई कि उसके कलामय पग न रुक सके। वह फड़क उठी। उसकी वह नृत्यमुद्रा विश्व के चिरन्तन-सत्यों का रहस्य खोजने सी लगी। कलाकार की प्रसन्नता सीमा के बाहर उछलने लगी थी, युग-युगांतर की उसकी शव-साधना आज मूर्तिमान हो उठी थी। दोनों ही अपनी चरम-सिद्धि पर पहुँच चुके थे और मानों दोनों को ही मनचाहा वरदान मिल गया था। कोकिला तो इतना अधिक आत्म-विस्मृत हो गई कि नृत्य करते-करते कलाकार के चरणों में गिर पड़ी। सचमुच आज कला ने कला को प्राप्त किया। कलाकार ने सहारा दिया, वह चेतन हो खड़ी हो गई।

"कलाकार, यह प्रसाधिका मेरी हो चुकी।"

कलाकार हँस पड़ा—"यह क्या देवि, इस साक्षात् कला को निर्मित कला से प्रीति!"

"नहीं कलाकार मेरी साधाना आज पूरी हुई। इस निर्मित प्रसाधिका के साथही इस कोकिल को भी सँवारो!"

कलाकार मूक रह गया। अपनी परिस्थिति को वह अभी भी नहीं भूल सका था। वह सोचने लगा—एक ओर तो फूलों में पली कला है दूसरी ओर काँटों में फूली, फिर साथ कैसा!—नहीं, यह न होगा, और कलाकार बोल उठा—"नहीं देवि, यह न होगा। कलाकार के लिए कला की अंतःशक्ति के उद्‌बोधन के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण विभूति है—कला के प्रति एक पवित्र सम्मान की भावना, जो मुझे मिल चुकी।

मेरी साधना आज पूरी हो गई। तुम्हारा भार इस कलाकार के लिए असह्य होगा....'' कहते-कहते कलाकार मूर्छित हो गिर पड़ा।

"क्या कहते हो कलाकार ? वचन देती हूँ कि वैभव में पली यह कला, झोपड़ी में भी उसी तरह पल्लवित होती रहेगी। लो उस विश्व कलाकार का उसकी पंच-क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करता—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—यह ताण्डव—नृत्य, हम जीवन के प्रथम—प्रहर को इसी से प्रारम्भ करें।" और कोकिला भगवान् शंकर के तांडव-नृत्य में निरत हो गई। उसका दाहिना हाथ विश्व के संरक्षण के लिए ऊपर उठ रहा है और बायें हाथ में भक्त जनों को अभय—दान मिल रहा है। लेकिन दूसरे ही क्षण कोकिला के नेत्र कलाकार हेमन्तकुमार पर पड़े। वह नृत्य—बन्द कर एक दम कलाकार पर टूट पड़ी। किन्तु वह कलाकार तो चिर-निन्द्रा में विलीन हो चुका था।

कोकिला बिलख-बिलख कर रोने लगी। सारा वातावरण उसके रुदन से भर गया। सारी प्रतिमाएँ फूट-फूट कर रो पड़ीं। तभी अन्तरिक्ष से कोई चिल्ला उठा—"देवि ! शांत; कलाकार तो सफल होकर अमर हो गया। अब तुम लोक-जीवनको छूकर अपनी कला से स्वस्थ्य-प्राणवान् कृतियाँ दो, नई—दिशा दो। कलातरु के तन्तुओं को देश के कोने-कोने से जीवन-रस ग्रहण करने दो। कोकिले, उठो; अभी तुम्हारी साधना पूरी नहीं हुई। तुम्हें तो कलाकार की कोमल कलापूर्ण प्रसाधिका की प्रतिष्ठा करना है।"



अभिशाप



कल्लू, हाँ कल्लू कहकर ही तो पुकारते हैं उसे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, राजस्थानी ऊँचा ललाट, छोटा सा कद सुन्दर चाल राहगीरों को अपनी ओर खींच लेती है। उमड़ती हुई सावन की घटा जितनी प्यारी होती है उतनी ही प्यारी है कल्लू की कोमल देह। कल्लू का एकाध माह का एक नन्हा सा बछड़ा है—बड़ा सुन्दर, मृग सा चौकड़ी भरता, घर-आंगन एक करता है। कल्लू उसे बड़ा प्यार करती है, शायद उसे देखकर कल्लू को अपनी से दूर हुए कई वर्ष हो गए। उसने अपने मालिक और अपने परिवार की बड़ी सेवा की। उसके बच्चों को घी, दूध से

सदा सन्तुष्ट रखा, उसकी इज्जत भी रही परन्तु संसार बड़ा स्वार्थी है। जब वह बूढ़ी और दूध देने योग्य न रही तब उसके मालिक ने उसे बेंच दिया। जाने बेचारी जिन्दा है या कसाई के बकरे की तरह उसका भोजन बन गई। कल्लू ने उसे अभी तक कभी दूसरी बार नहीं देखा।

कल्लू उसकी अन्तिम बेटी थी, बड़ा प्यार करती थी वह और इसी से कल्लू भी अपने बछड़े के साथ उतना ही प्यार करती है। जब उसका स्वार्थी मालिक कल्लू के प्यारे बच्चे को दो-एक चरण के लिए छोड़ फिर खूँटी से बाँध देता है तब वह उसे बड़े प्यार से चाहती है—बच्चे को भी इस ममता से बड़ा मजा आता है। कल्लू की आँखों में आँसू छलछला उठते हैं—पास रहते भी बछड़े के लिए दूध पहुँचके बाहर है। थोड़ी देर के लिए वह छोड़ा जाता है और फिर दूर, बहुत-दूर दृष्टि के ओझल बाँध दिया जाता है। मिलन के इन दो-चार पलों में कल्लू अनन्त सुख का अनुभव कर लेती है। उसका मालिक जितना अधिक दूध निकाल सकता है, निकाल लेता है। मालिक की इसी निर्दयता ने कल्लू को चोर बना दिया है। क्या करे वह भी विवश है—यदि दूध चोरी से बचाकर नहीं रखती तो उसका प्यारा बछड़ा भूखा रह जायगा। रोज सुबह कल्लू घर के बाहर चली जाती है और संध्या को घर वापिस लौट आती है। घर से जाने में उसे जितना दुख होता है, लौटने में उसे उतना ही उल्लास और हर्ष होता है। अपने बछड़े को देखने की लालसा से वह दौड़ती हुई घर आती है और रास्ते भर दुलार भरे शब्दों से बच्चे को पुकारती रहती है। लेकिन दुनियाँ का अन्याय भी कैसा विचित्र है। वह दूर बहुत दूर, आँखों से ओझल एक फूस की नन्ही सी छाया में बाँध दी जाती है, जहाँ से वह अपने बच्चे का मुख भी

नहीं देख पाती । फिर भी माता की ममता 'माँ माँऽऽऽ' के प्रखर-स्वर में कराह उठती है और बदले में स्नेहासिक्त उत्तर पाकर कल्लू बाँसों उछल पड़ती है ।

कल्लू की दुपहरी का समस्त जीवन-विन्ध्याचल के हरित कुञ्जों में नर्मदा के तीर, व्यतीत होता है । लहलहाती हुई घास में अपनी सहेलियों के साथ चरती है, फिर नर्मदा के शान्त-एकान्त तट पर वह सारा धेनु-समूह अपने खुरों से धूल बिखेर देता है । दुपहरी भर सब एक साथ 'पागुर' करतीं दिन भर के सारे सुख दुखों का परस्पर विनिमय सा कर लेती हैं । धीरे-धीरे जब रवि-किरणें झुलसकर नभ के आँगन से उतर अस्ताचल पर्वत पर विलीन हो जाना चाहती हैं तब वह ग्वाला हाथ में लम्बा डंडा लिए एक लम्बी टेर लगाता है और बात की बात में सारा पशु-समुदाय एकत्रित होकर गाँव की पगडंडी से चल पड़ता है । स्मरणशक्ति और आज्ञापालन का इससे बढ़कर और कौन सा सुलभ-उदाहरण उपलब्ध हो सकता है ।

बस, कल्लू का यही क्रम रहता है । गर्मी, जाड़ा, बरसात–हर ऋतु में मशीन की तरह एक सा काम चलता जाता है । भीषण गर्मी से व्याकुल जब 'दीरघ-दाघ-निदाघ' समस्त जग को तपोवन सा कर देता है तब भी उसे पंखे की जरूरत नहीं पड़ती, जाड़े की कवि बाणभट्ट की कटकटाती हुई सर्दी में न उसे वस्त्रों की जरूरत पड़ती और न बरसात में किसी तरह के छाया की । स्वार्थलिप्सा, मोह, अहंकार और सौंदर्य सब कुछ त्याग वह अपना समस्त जीवन अपने मालिक के चरणों में न्यौछावर कर देती है । उसका परिवार भी कल्लू के दूध का पान कर दिन-दिन फूलता और सन्तुष्ट होता है ।

\+ + +

कार्तिक का महिना था । पके-पके धान के खेत लहलहा रहे थे ।

कल्लू खेतों की मेड़ों के बीच से 'माँऽऽऽ' का स्वाभाविक-स्वर करती चली जा रही थी। आज उसके ग्वाले ने उसे तेजी से एक डण्डा मार दिया, बेचारी की पीठ छलछला उठी। क्रोध से वह दूसरी ओर भाग चली, ग्वाले ने डंडा लेकर उसका पीछा किया परन्तु कल्लू की अधेड़ जवानी से वह पार न पा सका। इसी से वह आज इस ओर निकल पड़ी है। उसकी आँखों से मोतियों की लड़ियाँ लुढ़क रही थीं। चारों ओर वह दृष्टि उठाकर देखती लेकिन कहीं भी उसे अपने जाति का कोई प्राणी न दीखता। हताश हो उसकी दृष्टि आस-पास लहराते, बल-खाते और झूला-झूलते धान के पौधों पर पड़ी। हवा के झोकों के साथ धान के खेतों में गिरती ऊठती लहरें देखकर कल्लू के मुँह में पानी आ गया। आज विन्ध्याचल की हरियाली भी उसके लिए दुर्लभ थी। उसने खेतों से उतरने का प्रयत्न किया किन्तु बुद्धि के साक्षात् पुतले, अपने को मालिक कहला कर पशुओं को गुलाम बनाने वाले उसे दुत-कार देते, कोई गुस्सा से एकाध डंडा दे मारता। कल्लू उनकी मार का उत्तर अपना सिर झुकाकर अभिवादन करते हुये देती और आगे बढ़ जाती। १—२—३—४, इस तरह कल्लू ने अनेक खेत पर कर डाले पर उसे कहीं एक दाना भी न मिला। अन्त में कल्लू ने पहाड़ी के किनारे एक खेत देखा, वह सूना पड़ा था। अतएव वह उसी में घुस पड़ी। खेत के बीच में अमराई की छाया के नीचे वह उस अपार निधि को अपने छोटे से मुँह में समेटने लगी। शायद इस समय वह उस खेत के अपरिचित मालिक को अन्तरात्मा की सहानुभूति मय अभिव्यक्ति से परिपूर्ण उन खेतों सा पल्लवित होने का शुभाशीर्वाद दे रही थी।

आज कई दिनों के बाद कल्लू को ऐसा मनमाना भोजन मिला था। उसे तत्काल ही अपने प्यारे बछड़े की याद ही आई। दस-वर्ष पहिले, आज भी कल्लू को याद है, ठाकुर जगमोहनसिंह के उस खेत में

वह अपनी प्यारी माता के साथ धान के पौधे खा रही थी। इसी बीच ठाकुर साहब खेत की ओर आए। कल्लू अपनी माँ के साथ भागी लेकिन ठाकुर साहब ने बलपूर्वक पकड़कर उसे पुनः खेत में कर दिया और थपकियाँ दे देकर कहने लगे--"खाओ, मेरे भारत की अभागी माताओं! खूब खाओ, तुम्हारे परिश्रम के परिणाम-स्वरूप ही तो ये पौधे गर्वोन्नत लहलहा रहे हैं, इनका गर्व चूर करो।" और कल्लू की माँ ठाकुर साहब का प्यार पाकर पौधे खाना भूल गई, वह ठाकुर साहब की बाहों को चाटने लगी। स्नेह की दो बूंदें नयनों की कोर से बरस पड़ीं। पशु हैं तो क्या, भले-बुरे का ज्ञान सभी को रहता है।

कल्लू, अतीत के उन चित्रों के मनन में संलग्न थी कि पीछे से किसी ने आकर 'एक-दो-तीन' भारी लट्ठ प्रहार से गिनती आरम्भ कर दी। कल्लू सब कुछ भूलकर उन प्रहार की चोटों से इतनी दब गई कि न तो पीछे लौटकर देख सकी और न भाग सकी। बेचारी वहीं अररा कर बैठ गई, फिर भी वह घातक-प्रहार उसपर होता ही रहा। इसके बाद उस 'मालिक' नामधारी दो पैर के दयावतार जानवर ने उसे रस्से से बाँधा और जबरन मार-पीटकर कल्लू को धीरे-धीरे उस पिंजड़े तक ले गया जहाँ अपने अपराध का प्रतिशोध करने के लिए जानवरों को भूखा-प्यासा बन्द कर दिया जाता है। उसकी करुणा को भी तनिकसी करुणा न आई। कल्लू न चिल्ला सकती थी और न खड़ी हो सकती थी। कमर और घुटनों ने जवाब दे दिया था, बेचारी उस खुले-बन्दीगृह में पड़ी अपनी पीड़ा में तड़पती रही।

× ×

चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी, अन्धेरा ही अन्धेरा था। ऐसे में कल्लू के कानों में 'माँऽऽऽऽ' का अपरिचित-स्वर गूँज रहा था। उसे लग रहा था मानों उसका प्यारा बछड़ा उसके बिना-व्याकुल तड़प रहा

है। कल्लू ने उठने का प्रयत्न किया लेकिन शक्ति ने साथ न दिया। वह मानव की इस दुष्टता पर रह रहकर आँसू बहाती रही !

पौ फटी और तभी कल्लू ने किसी को अन्दर आते देखा। कल्लू में साहस आया, आशा ने सहारा दिया। पानी पाने की आशा से उसका मुँह खुल पड़ा और दबे-स्वर में उसने 'माँऽऽऽ' कहकर चिल्लाया। इसी समय उस मानव ने उसके मुँह पर एक डंडा दे मारा। कल्लू ने उठने का प्रयत्न किया पर वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। उसने अपना, मुँह ऊपर उठा लिया। उस 'बुद्धि के पुतले इन्सान'–से केवल थोड़ासा पानी पाने के लिए लेकिन बदले में उसे पुनः एक घूसा ही मिला। कल्लू का शक्तिहीन मुख मिट्टी चूमने लगा। एकबार फिर उसके कानों में अपने बछड़े का 'माँऽऽऽ' का स्वर गूँज उठा। उसने आँख ऊपर उठाई, शायद बच्चे को देखना चाहती हो पर दूसरे ही क्षण मानव के इस व्यवहार पर भी उसे आशीर्वाद देती वह सदा के लिए सो गई।

उस बेशर्म, बेरहम, दयाहीन मानव ने उसकी खाल खींच ली और मांस चीलों को चुगा दिया।

एक आह उन मांस के ढेलों से निकली और बिखर गई–"वाह रे इन्सान ! तू मानव नहीं दानव है ! जा, तू भी अपने पापों में तड़पता रहेगा, कुत्तों की मौत मरेगा, दाने,दाने को तरसेगा, पथ की धूल फाँकता फिरेगा। तू बूँद-बूँद घी और दूध को तरसेगा ?" इसी समय धान के खेतों से एक सर्द झोंका कुछ लड़खड़ाते स्वर छोड़ गया–"ओ, क्षमामयी ! अन्त में दानव तेरे वरदान से ही अंकुरित होकर पल्लवित होंगे। तू युग–युगों तक मानव के निर्ममता की काली छाया छिपाये, ममता की साकार प्रतिमा होगी।"



दफ्तर की लड़की

कहावत प्रसिद्ध है—गरीब की लुगाई गाँव भर की भौजाई होती है, उसी तरह यदि यह कहा जाय कि दफ्तर की लड़की सबकी बीवी होती है तो अत्युक्ति न होगी। वास्तव में लड़की दफ्तर में बड़ा भारी आकर्षण पैदा कर देती है, मानों उसके पास चुम्बक की शक्ति हो। दफ्तर के बाबुओं का इतिहास तो वैसे ही निराला है। दिनभर फाइलें यहाँ-वहाँ उठाने-धरने के सिवाय और उनसे कुछ होता ही नहीं। जैसे एक वकील कोर्ट में प्रायः सभी आदमियों को अपने मुवक्किल की हैसियत से देखा करता है, ठीक उसी तरह दफ्तर के बाबुओं की आँखें भी अपने किसी देने वाले को सदा



ही खोजा करती है। चाय की एकाध चुस्की ही यदि दृष्टि-उलझाने के बदले मिल गई तो फिर उनके हाथ कुछ न कुछ और लग ही जायगा— ऐसा उनका विश्वास है। फिर ऐसे 'कुशाग्र-बुद्धि' बाबुओं के दफ्तर में यदि कोई लड़की भी सहकारिणी हो तो फिर क्या है, सोने में सुहागा मिल गया! दिनभर कनखियों से इशारों की बौछार और यदि कहीं उसने अपनी कुछ कठिनाई किसी बाबू से पूछ ली या धोखे से किसी की ओर आँख उठाकर देख लिया तो फिर क्या है—बाबू को मानों स्वर्ग मिल गया! उस समय साहब की आज्ञा का महत्व भी उनकी आँखों से गिर जाता है। दफ्तर में यह हालत यदि जवान बाबुओं तक ही सीमित रहे तो भी खैरियत है, लेकिन ४-५ बच्चों के बाप, सन जैसे सफेद दाढ़ी, मूँछ वाले बुड्ढे भी इस बीमारी में पड़ जाते हैं। दफ्तर के खुर्राट सुपरिन्टेन्डेन्ट से लेकर बड़े आफिसर तक उस सुकुमार कलिका के पैरों पर अपने को झुका देते हैं। ऐसा मालूम होता है मानों लड़की दफ्तर की नियामत हो परन्तु वास्तव में मन-बहलाव के सिवाय और अधिक उसका मूल्य ही क्या हो सकता है!

कमला भी दफ्तर की एक लड़की ही थी और अपने जीवन के सत्रह-बसन्तों को पार कर चुकी थी। बचपन से दुलार में पली उसकी सुकुमार काया अपने पिता के आकस्मिक मृत्यु से भी झुलस गई थी। उसके पिता कवि, लेखक और कहानीकार थे। उनका बड़ा सम्मान था परन्तु अन्य साहित्यकारों की तरह उनका जीवन भी सदा आर्थिक कठिनाइयों में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने कभी निश्चिन्तता की सांस न ली और इसी दुख की ज्वाला में घुटते-घुटते वे असमय ही इस संसार से चल बसे। इतनी कठिनाई के समय भी—कमला ने अध्ययन किया। मैट्रिक की परीक्षा प्रथम-श्रेणी में उत्तीर्ण हुई फिर कॉलेज में एडमीशन लिया। परन्तु दुर्भाग्यवश उसी वर्ष सहारे की रस्सी टूट गई, और उसे

अपनी पढ़ाई बंद कर देना पड़ी । माँ अपने पति का वियोग अधिक दिनों तक न सह सकने के कारण अभागिनी कमला को एकाकी छोड़कर चली गई थी । अब कमला पर तीन-चार छोटी-छोटी बहिनों का भार एकाएक आ पड़ा था।

कमला को नौकरी की तलाश में कई महिने धक्के खाने पड़े तब कहीं जाकर सेक्रेटरियेट में उसकी नौकरी लगी । नारी, कविता-कानन की कुसुम, कवि की साकार प्रतिमा, प्राण और प्रेरणा स्वयं एक यंत्र से अधिक नहीं होती। वह केवल विद्युत् की तरह काम करना जानती है और शायद इसीसे उसे दफ्तर में टाइपिंग का काम दिया गया । कमला की वीणा के कोमल तारों पर नाचने वाली गुलाब की पंखड़ियों से भी कोमल और छोटी अंगुलियां, उससे भी तीव्र-गति से टाइप-राइटर पर चलने लगीं। नारी के नूपुरों की रुन झुन झनकार उस टाइप राइटर में जाकर समागई और उसके बेढ़ब स्वरों को भी उसने संगीत की स्वर-लहरी में ढालकर मादक बना दिया।

जब पहिले पहल कमला इस दफ्तर में आई तो उसे बड़ी शर्म मालूम हुई। वैसे तो वह पहिले भी अपने छात्र-जीवन में लड़कों के साथ रह चुकी थी लेकिन आज न जाने यहाँ उसे क्यों घबराहट मालूम हुई! शायद इसीलिए कि वहाँ लड़कों के बीच रहते हुए भी उसे अपने नारीत्व पर गर्व था और आज उसकी इज्जत के ग्राहकों बाबूओं के बीच मानों उसका नारीत्व लुटा जा रहा था। एक बार वह सिहर उठी परन्तु उसकी असमर्थता ने मानों उसे एक घूंसा मार दिया हो। वह मन-मसोस कर रह गई। जैसे जैसे समय पार होता गया उसकी शर्म क्रमशः घटने लगी। उसका एक दिन भी ऐसा न जाता जब उसे किसी न किसी बाबू से बात न करनी होती। एक तो लड़की वैसे ही दफ्तर के लिए एक अजीब चीज़ होती है, फिर कमला का गोरा और गठीला बदन मुँह पर

सोने की डंडी का सुन्दर चश्मा, घुंघराले बालों के गुच्छे और इन सबके ऊपर उसका सुरीला कंठ-सबकी आँखे बरबस उसपर बरस पड़तीं। सभी कमला के कृपापात्र बनने की इच्छा करते। इन्हीं आकर्षक गुणोंसे इस दफ्तर में उसका शीघ्र परिचय से संपर्क बढ़ने लगा। परिचय से संपर्क बढ़ा और संपर्क से घनिष्ठता।

वैसे तो उस दफ्तर के इतिहास में कितनी ही कुमारियाँ अपना नाम लिखा चुकी थीं परन्तु बाबुओं ने इसके पहिले न तो कमला सी लड़की देखी थी और न ऐसी लड़की के साथ काम ही किया था। कमला बड़ी सीधी और सरल थी। विद्या के ओज ने उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए थे। उसकी गम्भीर मुखाकृति पलपल पर तरल मुस्कान बन कर बरस पड़ती थी। जब दफ्तर का कोई बाबू उससे बात करने आता तो वह झिझकती नहीं अपितु उसका बराबर उत्तर देती। जब वे उसे कुछ खिलाते तो वह उसे आदरणीय समझ कर खा लेती।

कमला भावुक थी और कभी भावना के आवेश में आँसुओं के उपहार से लोगों को सजा भी देती। वह सीधी थी लेकिन इसलिए कि उसने दुनियाँ नहीं देखी थी। वह सुलझी थी इसलिए कि उसने खूख्वार लोगों को देख लिया था। उसके मुख का भोलापन वास्तविकता से अपरिचित न था, और भावुक होते हुए भी नारी के नाते वह वस्तु वादी थी।

समय बीतता गया और दफ्तर में परिचय भी बढ़ता गया। कमला भी पूर्ण स्वतंत्र तो थी ही, उसे अपने विवाह की भी चिन्ता हुई। प्रत्येक कुमारी अपने जीवन में एक ऐसा साथी चाहती है जो उसका अपना हो, जिस पर उसका अटूट विश्वास हो और जो सच्चे अर्थों में उसका सहायक हो सके। कमला एक ऐसे ही साथी की खोज

में थी। वह एक आदर्श महिला बन कर अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थी।

दफ्तर के सभी उसके कृपा-पात्र बनना चाहते थे परन्तु कमला दफ्तर की उस बाबू को ही चाहती और उसे अपना जीवन-साथी बनाना चाहती थी। कमला की तरह भगवती बाबू भी अत्यन्त होनहार नवयुवक थे। किन्हीं अज्ञात परिस्थितियों के वश वे ग्रेज्यूयेट होते हुए भी बाबूगिरी करते थे। कमला को इससे अच्छा साथी मिलना मुश्किल था। दोनों में क्रमशः प्रेम का यह अंकुर प्रति दिन बढ़ने लगा। छुट्टी के दिन प्रायः दोनों ही किसी पार्क में घूमते देखे जाते। कभी-कभी तो कमला काफी रात्रि के बाद घर वापिस आती।

दफ्तर में हजार तरह के बाबू थे। कोई अपने को बहुत शरीफ समझता और अपनी शराफतके लम्बे-लम्बे पुल बाँधता, कोई ऊल-जलूल बकता, गन्दी और लफंगी बातें करता और कोई अपने गुण और सुन्दरता की दुहाई देता कमला के पास तक पहुँच जाता तथा बड़ी-बड़ी बातें करता। कमला अक्सर सोचा करती कि साहब से रिपोर्ट करदूँ। परन्तु वह रुक जाती क्योंकि उसे मालूम था कि ऐसी बातों की शिकायत ले जाना अपने को ही बलि का बकरा बनाना है। फिर वह साहब के विषय में भी बहुत कुछ सुन चुकी थी। साहब भी काम से थोड़ी फुरसत पाते तो कमला को अवश्य बुलाते। यहाँ वहाँ की बातें करते और अपनी दया की बड़ी भारी डींग हाँका करते। उस दफ्तर की दो लड़कियाँ साहब का शिकार बन चुकी थीं, अब कमला पर भी हाथ साफ करने की उनकी नियत थी। भगवती बाबू इस बात को जानते थे, इससे कमला को रोकते परन्तु कमला भी आखिर क्या करे? वह उसका साहब ही है, यदि उसकी आज्ञा नहीं मानती तो उसे अपनी सर्विस से ही हाथ धोना पड़ता।

धीरे-धीरे कमला को दफ्तर का बहुत थोड़ा काम करना पड़ता। भगवती बाबू यह सब रोज देखा करते। एक दिन उन्होंने देखा कि साहब ने कमला के जूड़े को पकड़कर जोर से खींचा, कमला उफ कर रह गई, आखिर कहती ही क्या? भागवती बाबू ने जैसे ही यह देखा कि दंग रह गए। उन्हें कमला से नफरत हो गयी। मनुष्य का अलि-सा गुंजन करता हृदय कितनी भी कलियों पर चाहे क्यों न मंडराता रहे परन्तु अपनी प्रेमिका को यदि प्रेम के रास्ते से तनिक भी भ्रष्ट देखता है तो फिर क्षमा नहीं कर सकता। फिर कमला का मौन कुछ अंशों में सम्मति का लक्षण भी कहा जा सकता था जिसे देखकर भगवती बाबू कैसे शांत रह सकते थे।

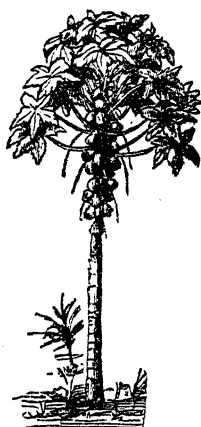
कमला ने भी अनुभव किया कि भगवती भी उससे खिंचते जा रहे हैं। उन्हें समझाने की बहुत कोशिस की कि—मैं तुम्हारी ही हूँ और रहूँगी मझे धन और पद की चाह नहीं! परन्तु भगवती बाबू का मनुष्य-हृदय कुछ भी सुनने को तैयार न हुआ।

रविवार का दिन था। कमला सिनेमा जाने के लिए बन ठनकर भगवती बाबू के यहाँ जा रही थी कि चौराहे पर साहब की कार मिल गई। साहब ने तुरन्त कार रोक ली और कमला से बातें करने लगे। फिर कमला के न चाहते हुए भी जबरन उसे कार पर बैठा लिया और जैसे ही कार मोड़ी कि भगवती बाबू की नजर उस पर पड़ गई। अब क्या था, कमला के पैरों से मानों धरती खिसक गई, उसने प्रयत्न कर साहब से कार रुकवाई और नीचे उतर पड़ी। ऐसा करने में कमला को साहब का कोपभाजन भी बनना पड़ा। उतर कर उसने भगवती बाबू की खोज की परन्तु वह तो न जाने कब, किस ओर निकल गया था। कमला को अन्त में हताश हो अपने घर लौट जाना पड़ा।

इस घटना के थोड़े दिन बाद ही कमला को निमन्त्रण-पत्र मिला

भगवती बाबू की शादी हो रही है जिसमें उसे आमन्त्रित दिया गया है। कमला एकदम स्तम्भित रह गई, उसका सिर चक्कर खाने लगा, लेकिन आखिर करती ही क्या? नारी की विवशता जीवन का अभिशाप बनकर उसके सुकुमार यौवन को दावानल की तरह जलाने लगी।

दूसरे दिन से फिर किसी ने उसे दफ्तर में नहीं देखा।



गुण्डा



दृशन् विहीनं जातं तुण्डम्—को अक्षरसः चरितार्थ करता जबलपुर की कभी सपाट और कभी ऊबड़-खाबड़ सड़कों के बीच, चिपका हुआ मटमैला पायजामा जिसके झरोखों से झांकता शरीर लिए, सिरमें वही 'धवल-धूसर' पगड़ीबांधे अपने पोपले मुँह से बारंबार 'पोस्ट आफिस ! पोस्ट-आफिस !' का घरांया स्वर करते चला जा रहा है, सन जैसे बड़े बड़े रेशे, दाढ़ी और मूंछ के रूप में बाहर बिखरे हुए हैं। मुंह की सिकुड़न, नेत्रों की शिथिलता और डग-मग चलते पग बता रहे हैं—आज मरे कल दूसरा दिन हो ! एक फटा सा कोट पहिने है, जिसमें लगे चिथड़े लोगों के

लिए भले ही हास्यापद हों लेकिन उसके लिए बड़े काम के हैं—जैसे पहाड़ों के बीच गुफायें ! वह पोस्टकार्ड, लिफाफा, म० आ०—यों कहिए पोस्टआफिस के जरूरत की सारी चीजें बेंचता है और कोट की उन गुफाओं में ही वह उन्हें आश्रय देता है।

जाति—जी हाँ जाति से शरणार्थी—सरदार जी मालूम पड़ता है। पंजाब का होगा। पूछने पर कह देता है-,मेरी जाति सेवक है।' पंजाब में कहां रहता था, कहा नहीं जा सकता लेकिन अब वह नौदरापुल के पास करीमखां की झोपड़ी की छाया में पड़ा रहता है। आराम क्या है, रात को कुल ५-६ घन्टे मिलते हैं। सुबह ७ बजे निकल पड़ता है और शहर की तंग गलियों से लेकर बड़ी-बड़ी सपाट सड़कों में चक्कर काटा करता है, बस एक ध्वनि करता पोस्ट-आफिस ! पोस्ट-आफिस ! इतने में कोई उसे बुला लेता है और वह उस ओर चल देता है। क्या चाहिए जी'—और ग्राहक की इच्छानुसार पोस्टकार्ड, लिफाफा, टिकट जो भी चाहिए अपने काँपते हाथों से निकालकर दे देता । बदले में कीमत के बाहर लोग उसे पैसा दो पैसा दे देते हैं और अत्यन्त विनम्र-स्वर में 'मेहरबानी' कहता वह आगे बढ़ जाता है। पागल तो नहीं है, पागल सा है या कहिए मस्त मौला है। भिखारी नहीं, इस तरफ के उन लोगों सा नहीं जो परिश्रम से छुपना चाहते हैं, दर-दर 'मुट्ठी मिल जा माई, एक पैसा दिला दे राम'—की टेर करते फिरें। पञ्जाबी नस्ल का है, रणजीत सिंह को खानदान का। मुफ्त लेना पाप समझता है। इस उम्र में मीलों का चक्कर काटने के बाद भी मुख में वही मुसकान खेलती रहती है, जाने जवानी में क्या करता रहा होगा, कहता है—'मुल्तान में रहा होता तो देखते, भगवान् सिंह की चौपाल पर गुरु गोविन्द सिंह के भजन ऐसा सुनाता था, सब देखते रह जाते थे। यहाँ तो गया गुजरा सब।' कोई कह उठता है—'सरदार जी एकाध गाणा

सुनाइए न !'

'छोड़ो जी, जाणा है न !'—और पोस्ट-आफिस का एक गीतात्मक स्वर करता चला जाता है। फिर कहीं से आवाज आती है—'लाना जी !'

'कहिए जी, क्या देणूं'—और उन गुफाओं से ग्राहक की मनपसन्द चीज़ निकालकर देने लगता है। वेद प्रकाश बाबू ने एक रुपये के लिफाफे खरीदे और बदले में अठारह आने दिए तो वह बोल उठा—'टिकट लेंगे तीन पैसे की, दो आने तो बहुत हो गए। तुम मेरा पेट चलाते हो, भगवान् तुम्हारा भला करेगा''—और केवल पांच पैसे लेकर वह चला जाता है। बस, अपनी धुन में मस्त। न वह रास्ते में नाटक देखने रुकता और न जादू। बायें किनारे से चलता न मोटर की परवाह करता, न तांगे या रिक्शे की। उसे अपने काम से काम। कहीं 'हाहाऽऽ' का स्वर गूँज रहा हो या क्रन्दन की आवाज, वह सदा उसी तरह मुसकराता चला जाता है। हाँ, बरसात में एक छाता अवश्य लगा लेता है—अपनी रक्षा के लिए नहीं, पोस्ट-आफिस के लिए ! कितना सुखी है उसका जीवन, चिन्ता-फिकर से दूर, सुख-संतोष से भरा !

× ×

लक्ष्मी टाकीज के सामने एक दुकान है। लोग उसे 'पानवाला' कहकर पुकारते हैं लेकिन वह पान के साथ सेव, भजिया और चाय भी बेचता है। लक्ष्मी टाकीज और उसके आस पास का भाग गुण्डों के लिए प्रसिद्ध है। शाम को चले जाइए, यहाँ बड़ी भीड़ मिलेगी—गाली बकती, बुरी-बुरी गालियाँ ! कोई महिला वहाँ से निकल जाय तो जाने कितने आँखें घूरने लगती हैं। पा सही तो द्वारकापुरी है—कहिए कृष्ण की द्वारकापुरी के थोड़े-बहुत अन्तर के साथ। रात को यहाँ की शोभा

देखते बनती है। सड़क पर झीना-झपटी की घटनायें तो रोज ही घटा करती हैं, निकलना मुश्किल हो जाता है। कोई युवक निकल किया कि जानें कितनी आहें उलझ पड़ती हैं। बस, उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे सहस्त्रों गोपिकायें कृष्ण से उलझने को लालायित हो रही हैं। आदर्श चरित्र का युवक न हुआ तो फिर समझ लीजिये वृन्दावन के निकुन्जों में प्रणय-लीला होने लगी। खैर, छोड़िए जी इन्हें, हमें इनसे क्या? तो हाँ, उस पान वाले की दूकान पर लक्ष्मी टाकीज के गुण्डे आकर बैठा करते हैं—तहमत काढ़े, जालीदार बनियान पहिने और रीछ जैसे बड़े-बड़े बालों को पीछे लौटाये। इनमें सभी जाति के गुण्डे हैं, लेकिन मुसलमान अधिक हैं। भारत के विभाजन के पहिले तो वह मुसलमानों का केन्द्र ही था और दिन-दहाड़े बड़ी-बड़ी घटनायें घट जाती थीं, परन्तु अब सुनने में नहीं आतीं।

सोंन-पापड़ी बेचता एक साईं उधर से निकला। लक्ष्मी टाकीज की बुलन्द-ध्वनि 'लो जवानी का जमाना आया'—के बीच गुण्डों की मस्तानी भीड़ बाहर निकल पड़ी।

साहिल शहर का माना हुआ गुण्डा था या यों कहिए कि गुण्डों का गुण्डा था। भगवान् ने भीम सी विशाल काली-काली देह भी तो दी थी और वे भयानक आँखें! देखता क्या था मानों खाने को दौड़ता हो! 'साईं—यहाँ ला'—साहिल ने पुकारा और साईं ने अपने पैर उस ओर मोड़ दिए। बस क्या था, साहिल को जितना खाना था खोंचे से निकाल लिया। जब साईं बिगड़ने लगा तो साहिल ने एक चपत रसीद कर दी। बेचारा रोते चुपचाप एक ओर चला गया। साहिल को अपनी प्रेमिका को एक पत्र लखनऊ भेजना था। कई दिनों से वह उसे लिखे रखे था लेकिन लिफाफा लाने की फुरसत न मिलती। पान वाले से साहिल ने एक पान मांगा और पैसा देने को जब हाथ जेब में डाले तो

वह प्रेम-पत्र भी निकल आया। तड़पन सी पड़ गई उसे, मैंने अभी तक ख़त नहीं भेजा।

"पोस्ट-आफिस"—की लड़खड़ाती ध्वनि साहिल ने सुनी।

"पोस्ट-आफिस आना जरा!"

"लाया, क्या चाहियें जी?"

"जी कुछ नहीं, दो आने का लिफाफा दे दे।"—सरदार ने जल्दी से एक लिफाफा साहिल को दे दिया। साहिल ने कहा—"अजी, पोस्ट-आफिस, यदि तुम्हें पैसा न दिया जाय तो?"

"तो कुछ नहीं जो, भगवान् देगा, जिसमें तेरा भला हो यही कर।"

"तो जा पैसे नहीं मिलते"—साहिल ने कहा।

"मरजी"—कहते सरदार आगे जाने लगा।

अनवर ने तब साहिल से कहा—"दे भी दे यार, दो आने तो हैं, मर जायगा बुड्ढा बेचारा।"

"तूही दे दे दया आती है तो!"—साहिल ने जबाव दिया। अनवर ने दो आना फेंकते हुए कहा—"लो पोस्ट-आफिस।" सरदार ने चुपचाप लौटकर दुअन्नी उठा ली और आगे चल दिया। साहिल ने ठहाका मारकर हँस दिया और फिर बोला—"एकाध दिन देखूँगा साले को, दुअन्नी ऊठा ही ली हरामजादे ने! लूट डालूँगा साले को!"

"बस, जाने भी दे यार"—बीच में रोकर अनवर ने कहा। पान वाले ने भी हाँ में हाँ मिलाई। साहिल पूर्ववत् हँसता रहा!

\+ \+

यह फुहारा है, जी हाँ हमारा फुहारा। नागपुरी संतरे, भुसावली केले, बम्बई-बनारस के आम, पुष्पवाटिकाओं के चुने हुए सुगन्धित पुष्पों, सागभाजी, कपड़े के ढेरों से घिरा हुआ, 'जीरा हर' की गर्दभ-स्वरमयी तेज आवाज और सेठ-साहूकार, नेता, अफसर, मिनिस्टरों की

प्ररिक्रमा देती कारों, तांगे, रिक्शे, साइकिलवालों के मुख से निःसृत वेदवाक्यों की कंठकटु आवाज, शहर के जवान-युवक-युवतियों की कभी गम्भीर, कभी इठलाती, बलखाती जवानी की लहरों के साथ अन्त में 'रामनाम सत्य है'–की विरागमयी वाणी सहित अपनी परिक्रमा देते हुए जन–समूह के बीच वर्षों से अटल, निस्पृह, दत्तचित्त होकर खड़ा 'चढ़े न दूजो रंग'–का साकार प्रतीक हमारा फुकारा। गोधूली की बेला है, शीतल एवं मन्द सुगन्ध पवन का एकाध झोंका जूही, बेला और चमेली की गन्ध से मिलकर सुवासित हो उठता है, चारों ओर खूब चहल-पहल है। साहिल केले वाले की दूकान पर खड़ा भाव तय कर रहा है। कहता है पहिले खाकर देखूंगा, अच्छा होगा तो ले लूंगा। केले वाली सकपकायी सी कहती है–"नहीं, हम न खाने देंगी, उसका पैसा देना होगा।" बस, इसी पर बड़ी झंझट होती है। अन्त में साहिल ने केला खा ही लिया और बिना पैसा दिये चल दिया। केले वाली बड़बड़ाती रह गई।

साहिल ने उस दिन का प्रेम-पत्र अभी तक नहीं डाला था, सोचा लेटर-बक्स में डाल दूं। पीपल के झाड़ में नीचे लगे लेटर-बक्स में उसने खत डाल दिया। सोचने लगा कि पोस्ट-आफिस आ जाता तो एक लिफाफा और ले लेता। चारों ओर साहिल देखने लगा।

सामने कमानियां की घड़ी। ८ बजा रही थी। 'पोस्ट-आफिस की वही चिर-परिचित ध्वनि उसे सुनाई दी। साहिल चिल्लाया–"पोस्ट आफिस यहाँ लाना।" पोस्ट-आफिस साहिल की ओर चल दिया।–"एक लिफाफा दे"–साहिब ने कहा।

"लेलो जी'–लिफाफा देते हुए उसने कहा।

'जा पैसा नहीं है'–अकड़कर साहिल बोला।

'मरजी'–उसने उत्तर दिया और फिर फुसफुसाई आवाज में कहने

गुण्डा

लगा–"हाय भगवन् , आज तो कुछ बिका ही नहीं, और·······!"

'एँ, गाली देता है हरामजादे'–साहिल ने कहा ।

"नहीं जी, मैं क्या गाली दूंगा । पंजाब में होता तो बताता"–और धीरे से आगे बढ़ गया ।

'ऐ क्या बताता ?'–साहिल झपटा । वह कोई बहाना तो चाहता ही था ।–उसने पोस्ट आफिस का कोट फाड़ डाला । सारे कार्ड, लिफाफे बिखर गए, दो चार साहिल ने उठा लिये । फिर एक तमाचा मारा । बेचारा सरदार सड़क पर गिर पड़ा ।

'हाय राम'–कहते वह पायजामा साफ करने लगा । लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई । बहुतों ने सरदार जी से सहानुभूति बताई, परन्तु कुछ लोगों को समय मिला कार्ड, लिफाफा लूटने का । चारों पुलिस वाले दौड़ आए । एक ओर से पान वाला भी आ पहुँचा; बोला–"क्यों बे, ये क्या कर दिया ?"

साहिल ने कहा–'चुप !' पुलिसवालों ने साहिल और सरदार के साथ कोतवाली की राह पकड़ी । साहिल कह रहा था–'छोड़ दिया साले को, ऐसा मारता फिर उठ न सकता । गाली देता है मुर्दा होकर !' 'मारलें जी तेरी मरजी, मैं तो बूढ़ा हूँ–जवानी में होता तो बताता'– स्वाभाविक गरूर ने जरा तेजी से उत्तर दिया । साहिल फिर तमका परन्तु पुलिसवालों ने बीच बचाव कर दिया ।

यह है कोतवाली–बड़ी मीनार जैसी लाल-लाल इमारत स्वयं सींकचों के अंदर बन्द, अपने अंदर सींकचे छिपाये । बस, इसी कोतवाली में रहते हैं कोतवाल, हाँ कोतवाल साहब, झगड़ा करनेवालों से झगड़ा करनेवाले ! पुलिसवालों ने यह मामला ले जाकर उन्हीं के सामने रख दिया । कोतवाल साहब ने साहिल से पूछा–"तुमने मारा है इसे ?"

'हाँ'—घमंड के साथ साहिल बोला।

'क्यों ?'—कोतवाल साहब ने पूछा।

"क्यों ? गाली दी थी और क्यों ?"

"क्यों सरदार जी गाली दी थी तुमने ?"

"जी नहीं, मैं क्या गाली देता, मरजी उसकी मार लिया उसने, जाऍं भी दूँ सरकार।"

पीछे से पान वाला बोल उठा—"कोतवाल साहब, यह क्या गाली देगा ! साहिल की बदमाशी है सब !" साहिल घूर-घूर कर पानवाले की ओर देखने लगा। कोतवाल साहब ने आज्ञा दी—"जेल में बन्द कर दो इसे।"

इतने में पोस्ट-आफिस बोल पड़ा—"मेरी एक प्रार्थना है:—कोतवाल साहब।"

"क्या कहना है सरदार जी"—कोतवाल साहब ने पूछा ?

"मुझे कोई चोट थोड़े लगी है, इसे छोड़ दीजिएगा हुजूर। मजाक करता रहता है मुझसे, जरा मन चला है और कुछ नहीं !"

साहिल आवाक् रह गया। वह आश्चर्य भरी दृष्टि से साहिल की ओर देखने लगा—शायद अपनी आत्मा से उसकी आत्मा का मिलान कर रहा हो, मानों उसकी क्षमता और सहनशीलता पर अपने को धिक्कार रहा हो। पोस्ट-ऑफिस मनुष्य नहीं देवता है, अल्लाह है, पैगम्बर है ! वह एक गीतात्मक ध्वनि करता वहां से पहिले की तरह मुस्कराता चला गया मानों फूल झुलस जाने पर भी हँसता हो।

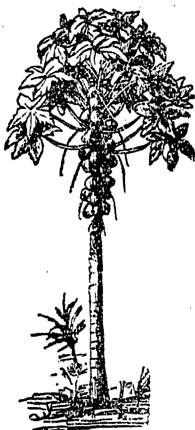
कोतवाल साहब ने साहिल को डांट डपटकर छोड़ दिया।

+ +

दूसरे दिन सबने अखबारों में पढ़ा—कल कोतवाली में एक बड़ी घटना घटी। पोस्ट-आफिस वाले सरदार ने साहिल गुण्डे को क्षमा कर

दिया। साहिल भी मुक्त-कंठ से उसकी प्रशंसा कर उठा। उसने निश्चय किया है कि वह आज से गुण्डा गिरी छोड़ देगा और गुण्डों का दमन करेगा। पोस्ट-आफिस मनुष्य नहीं देवता है!

और उस दिन से फिर किसी ने साहिल को लक्ष्मी टाकीज के सामने नहीं देखा।



गुदड़ी के टाँके



सावन की रात, वह भी काजल सी काली और भय से भी भयानक, फिर गौड़वाना प्रदेश जहाँ एक बार पानी गिरना भर प्रारम्भ हो जाय कि ऐसा लगता है मानों संसार के मेघों की वहाँ पंचायत ही जुड़ गई हो। ऊंचे काले-काले टीले, महुआ और पलाश के वृक्ष, पगडंडी से बहती जलधारा और फूस या खपरे के छोटे-छोटे टपरे, लगता है इन सबको अपने आप में डुबा लेना चाहते हैं। बादलों के नकाब से सारा आश ढक जाता है। भीषण-कालिमा एकबार अपनी विजय-दुन्दुभी का जयनाद कर झींगरों के स्वरों से मुखरित हो उठती है।

नदी की तेजधारा अपने निकटवर्तीय उपकरणों को निगलती, घराई सी आवाज करती बहने लगती है। इसके एक कोर पर ऊंचे से टीले में फूस की एक नन्हीं सी झोपड़ी बनी है। गाँव का सारा वातावरण शांत है केवल बादलों की गरज और पानी की सर्राती आवाज एक कोलाहल सा मचाये है परन्तु कानों की अभ्यसतता उसे कोलाहल कहने में सकुचाती है। इसी झोपड़ी में एक छोटा सा दीपक टिमटिमा रहा है। बीच में कभी बच्चों के रोने की आवाज भी सुनाई देने लगती है। इसी झोपड़ी के एक कोने पर बैठी रमिया मानों अपने जीवन का भार ढो रही हो, कभी गूदड़ी को खिसकाती है तो कभी बच्चों को थपकियाँ देकर सुलाती है। सुई-धागा लेकर उसने गूदड़ी को सीना शुरू किया। उससे एक अजीब सी बदबू आ रही थी क्योंकि वह बच्चों के मल-मूत्र में पली थी परन्तु रमिया को इस दुर्गन्ध में भी सुगन्ध का सा अनुभव होता। माता की ममता का सरल-स्नेह उसे निरन्तर स्पर्श कर सुवासित कर जाता है। और रमिया का सांवला वर्ण, ठिगना कद लेकिन काली और लम्बी अलकों के बीच वह बड़ी सुन्दर दिखाई देती है। लांगदार फटी सी मैली धोती, सकुचे और झुके हुए स्तनों पर कभी फटा सा पोलका या कभी पतली सी चौली, माँगों की सिंदूर रेखा, मस्तक का चन्द्र-बिम्ब और होठों पर खेलती सरल मुस्कान के साथ मिलकर उसकी अल्हड़ परन्तु दरिद्रता की काली छाया में पली, ढली हुई सी जवानी में निखार ला देती। वह सदा मुस्काती रहती मानों अपनी मुस्कान से-अपने जीवन की विषमताओं को वह परास्त कर देना चाहती हो। उसके दो बच्चे जिनकी आयु क्रमशः ४ और २ वर्ष की होगी, उसके लिए अमूल्य रत्न से हैं। भले ही उन्हें देखकर दूसरों को घृणा आ जाय परन्तु रमिया का कलेजा उन्हें देख ठंढ़ा हो जाता है। रमिया का पति एक ठेकेदार के यहाँ मजदूरी करता है और जंगल से लकड़ी काटते-

काटते उसका सारा शरीर ढीला पड़ जाता है तब रुपये बारह आने मजदूरी लेकर अपने घर लौटता है। यह मजदूरी उसके ढीले शरीर में बिजली की सी गर्मी दौड़ा देती है। इसी छोटी सी रकम से वह अपने परिवार का पालन करता है। अपने परिवार के ही पीछे वह ठेकेदार की गालियाँ सुनता रहता है। रमिया भी गांव में कूटने-पीसने का काम करती है परन्तु उसे हमेशा काम नहीं मिलता। जहाँ दो बच्चे जाते हैं भूख की रट लगाते हैं गाँव वाले भी चाहे कुत्ते को बासी बची रोटी के टुकड़े दे देंगे परन्तु उन बच्चों को कभी कुछ न देना चाहेंगे क्योंकि वे मानव के बच्चे हैं और कुत्ता बेचारा पशु है। आज के युग में मानव से पशु का मोल कहीं अधिक है। ऐसी हालत में रमिया को अपने यहाँ काम-काज देना एक मुसीबत मोल लेना नहीं तो क्या है?

रमिया उस छोटी सी झोपड़ी में दीपक के झिलमिलाते प्रकाश के बीच एक कोने पर बैठी गूदड़ी सी रही है। इसी समय झोपड़ी के छत से एकाएक कुछ सरकने की आवाज आई और रमिया ऊपर—देखती कि इसके पहिले ही पानी की नाली सी तेजधार उसके दो भोले बच्चों पर टूट पड़ी। रमिया आह मार कर कराह उठी! बच्चों को उठाकर वह दूसरे कोने में चली गई और फिर गूदड़ी सीने में लग गई मानों कुछ हुआ ही नहीं। रमिया को अपनी बिलकुल फिकर नहीं। वह यदि जी रही है तो सिर्फ उन बच्चों के लिए और यदि अपनी कुछ सुरक्षा करना चाहती है तो वह भी अपने भावी शिशु के लिए। एक ओर दीनता और दरिद्रता है तो दूसरी ओर स्नेह-मयी जननी की वात्सल्यता। गरीबी और ऐसी गरीबी जहाँ खाने के भी लाले पड़े हैं, मातृत्व की साध तृप्त नहीं होती। ईश्वर का न्याय भी तो विचित्र है। एक ओर सन्तान के लिए लोग तड़पते हैं, जप-तप, पूजा-पाठ करते और देवी-देवता मनाते फिरते

हैं तो दूसरी ओर दरिद्रता की सीमा की असीमता तक पहुँचाने में जन-संख्या का भार दिन-दिन बढ़ता जाता है।

रमिया ने जम्हाई ली, वात्सल्य और थकावट से भरी जम्हाई, नींद और प्रतीक्षा से भरी आँखों में पलभर के लिए मदिर हँसी छिटक गई लेकिन तत्काल ही उसकी आँखें घर के अन्दर गिरती हुई पानी की धार पर पड़ी और वह एक बार पुनः सिहर उठी। उसी समय उसकी स्मृति को मानों धक्का सा लगा हो। उसे अपने पति की याद सताने लगी। सुबह से वह लकड़ी काटने जंगल गया है। ऐसे पानी में जाने ....! और आशाभरी विचार-श्रृङ्खलायें आगे जाने क्या-क्या सोचने में तन्मय हो गईं—हाँ आज सप्ताह हो गया है, हफ्ते का श्रम आज अपना मूल्य लेकर आवेगा, तब....तब रमिया अपने लिए एक ब्लाउज़ बनवायगी, बच्चों के लिए कुछ नहीं तो एक-एक कुर्ता, और हाँ, सुबह से भूख की ज्वाला में तड़पते हुए उदर को शांत करेगी! आज वह खूब खायगी और अपने पति को भी भरपेट खिलायगी ताकि फिर हफ्ते भर खाने की लालसा उसे इतना पीड़ित न करे।

तेज हवा का एक झोंका छोटे से दर्वाजे से टकराया। रमिया की विचारधारा टूटी, वह उल्लास और आशा से दौड़ी लेकिन निराश होकर उसे लौटना पड़ा। बाहर तीव्रता से उड़ती हवा दर्वाजा-खुलते ही झोपड़ी के अन्दर भर गई मानों वह उसमें समा जाना चाहती है। दोनों बच्चे सिकुड़ते से चिल्ला उठे। रमिया ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से अन्धकार के बीच बाहर देखने का प्रयत्न किया परन्तु उसकी अल्प-दृष्टि गहनतम को न भेद सकी। हाँ, घरांती, बलखाती और गिरती उठती सरिता के भयङ्कर स्वरों ने उसे और भी भयभीत कर दिया। इसी समय किसी अनजानी आशंका ने उसके हृदय के तारों को हिला दिया। यहाँ बच्ची के क्रन्दन ने उसके मातृत्व को गहरा धक्का दिया

और भूख से व्यथित गर्भ की पीड़ा को ढोती हुई रमिया व्याकुल हो उठी। उसने दर्वाजा बन्द कर दिया और अपने जिगर के टुकड़ों को वह ढाढ़स देने लगी। इसी समय छत से किसी चीज के सरकने की आवाज पुनः मिली। देखते-देखते एक धार टूट पड़ी। रमिया मानों पागल हो उठी परन्तु शीघ्र ही उसने आगे बिस्तर सरका दिया। दर्वाजे के नीचे एक डंडे से छेद करते हुए उसने पानी को धक्का दिया। पानी बहने लगा, रमिया अब तक पानी से भींग चुकी थी, पर वह करती क्या? अपना आधा शरीर खोले वह गूदड़ी सीने में लगी रही। यहाँ छोटा बच्चा एकदम कराह उठा, उसे कल से बुखार था? आज की बरसात ने घी का काम किया। अब रमिया गूदड़ी के हर टांके के साथ बच्चों की स्वांस के उर्ध्व-पतन का नग्न-ताण्डव देखने लगी। उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। उसने चाहा कि वह झुककर अपने लाडले को चूम ले, परन्तु इसी समय उसे पास आता हुआ छप-छप का स्वर सुनाई दिया। रमिया एकदम दर्वाजे की ओर दौड़ गई। दर्वाज़ा खोला तो हवा का झोका अन्दर आया और दीपक की लौ लहरा उठी।

+ +

दीनू ने अपने गीले कपड़े उतारे। रमियाने झपट कर उन्हें दीनू से छीन लिए और निचोड़कर खूँटी के सहारे लटका दिए। अपने पति की यह दशा देखकर रमिया व्याकुल हो उठी, पर अपते भावों को छिपाकर गूदड़ी के एक ओर बैठ वह आशा तथा उल्लास से प्रश्नभरी मुद्रा में दीनू ओर देखने लगी। रमिया आगे कुछ कहती कि इसके पहिले दीनू ने अपना मुँह खोल दिया—"गरीबों पर भगवान् को भी दया नहीं आती, कितना पत्थर-दिल है ठेकेदार! और वाहरे ईश्वर तू ऊपर से यह सारा अत्याचार आँख बन्द किए और कान में तेल डाले देखता रहता

है।" रमिया विस्मय से दीनू के पिचके गालों की उठी हुई हड्डी को देखती रही। दीनू आगे कहता गया..."नाले में पूर था, दो घण्टे पूर उतरने की राह देखता रहा पर पानी बढ़ता गया। इसी समय एक मछुये की किश्ती बरगद के झाड़ से बँधी मुझे दिखी, उसे छोड़ मैं चला। पहुँचने में काफी देर हो चुकी थी। पहिले तो वह ठेकेदार चुप रहा परन्तु जब मैं लौटने लगा तो कड़े शब्दों में उसने कहा—"दीनू! हमारा पैसा हराम में नहीं आता। तुम्हारी नौकरी आज से बन्द की जाती है।" और फिर—"बदमाश, नालायक, कामचोर, नमकहराम..." और इसके आगे दीनू कुछ न कह सका। रमिया मौन आँसुओं के बीच से दीनू की धुँधली सी छाया देखती रही और दीनू फिर बोला—"सात दिनों की भी मजूरी देने से भी इन्कार कर दिया उसने ...कहने लगा, करले तुझे जो करना हो!.......करूँ क्या? गरीब का न्याय भगवान के हाथ रहता है। मनुष्य का न्याय तो गरीबों के साथ खिलवाड़ किया करता है रमिया, फिर वह उन्हें कहाँ नसीब होने का?"

रमिया की साँस बढ़ गई, वह घबड़ा उठी। रोजी और रोटी-दोनों ने उसपर एक साथ गहरी मार की थी। वह घबड़ाकर गिर पड़ी। दीनू बाज की तरह रमिया पर टूट पड़ा और चीख उठा—"रमिया, मेरी प्यारी रमिया!" दीनू ने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और उसके सूखे से मुँह की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर में रमिया ने आँख खोली—"अब क्या होगा?"

दीनू इसका उत्तर देता कि बच्चे की चीख उस झोपड़ी में गूँज उठी। रमिया हड़बड़ाती उठी और बच्चे की बर्फ सी ठंढी देह देखकर बिलख-बिलखकर रोने लगी। दीनू मौन अपलक दीपक की लौ को देखता रहा। लौ हवा के झोखों के साथ लड़खड़ा रही थी। देखते-देखते वह एकबार तेज होकर फिर झोपड़ी के अन्धकार में समा गई।

शहर वह उस दीन परिवार की यह दशा न देख सका। दीनू ने उठकर देखा, उसका स्नेह तो चुक चुका था फिर माचिस की डिबिया भी कहाँ से पाता !

बाहर हवा तेज होती गई !



—"एक पैसा बाबू जी ?"

—"क्या है ?"

—"एक पैसा सेठ जी !"

—"चल, अभी नहीं है।"

—"दो दिन का भूखा हूँ, माई बाप।"

—"कह तो दिया नहीं है, चल जा।"

—"भगवान् भला करे सेठ जी का।"

—"अरे, नहीं सुनता क्या"

—"एक पैसा......"

—"गजब हाल है आजकल इन भिखमङ्गों का, खड़े हो गए अड़कर, देखने में तो मोटा-ताजा दिखता है।"

—"दो दिन से कुछ नहीं खाया सेठजी, बिलकुल भूखा हूँ"

—'-तो क्या कुछ काम-धाम नहीं करते बनता। पर भीख माँगने से जो चल जाता है।"

—"नहीं सरकार, मुझे काम....नहीं मैं कामचोर नहीं! आपही.... हुजूर!"

—"हाँ, चल-चल यहाँ कुछ नहीं है, ठेका ले रखा है क्या भिखमङ्गों का....मङ्गल, भगा दे यहाँ से इस अड़ियल गँवार को!"

—"खुद ही भाग जाता हूँ, सेठ जी...." और एक पैर से डगरते हुए वह भिखारी आगे बढ़ गया।

सेठ जमुनादास अपने काम में फिर लग गए मानों कौन आया, क्या हुआ—इसको उन्हें न परवाह है और न फुरसत। भिखारी अभी भी मुसकरा रहा था जैसे उसे किसी ने कुछ कहा ही नहीं। यह भी एक जीवन है। यदि यह सच है कि महान् वही है जिसे सुख-दुख सम हो और मान मर्यादा का ध्यान न तो निश्चय ही इस भिखमंगे का जीवन महान् है। कोई उसे दुतकार कर भगा देता है, कोई गाली देता है, कोई मारने की धमकी देता है या मार भी देता है और कोई एकाध पैसा भी उसकी तरफ फेक देता है—मानो वह पैसा उनके पास बेकार पड़ा था—तब भी वह भिखारी बुरा नहीं मानता अपितु दो-चार आशीर्वाद भरे शब्द कहता आगे चला जाता है।

× × ×

—"मिल जाय माई!"

—"नाकों दम आ गई भिखमंगों के मारे, सुबह हुआ कि फिर शाम तक भिखमंगे ही भिखमंगे!"

—"मिल जाय माई, लंगड़े को कुछ मिल जाय।"

—"एँ, तुम क्या चाहते हो"—बाहर निकल कर एक छोटे से लड़के ने पूछा?

"—खुश रहो बाबू, भगवान् लम्बी उमर दे, अम्माँ से कुछ माँग कर ले आओ।"

"—हाँ-हाँ अम्माँ से माँद लाता हूँ"—और वह भीतर की ओर दौड़ा—"अम्मा री अम्मा, कोई कुछ माँग रहा है, दो फुथ दे आयें !"

—"भाग यहाँ से, जा खेल, दिनभर तो आते हैं।"

पर बच्चा न माना। आँगन में धुले हुए चावल रखे थे, बस माँ की नजर बचा कर—वह उन्हें ही उठा ले गया और भिखमंगे को देकर बोला—"तुम रोज आना, एँ।" भिखमंगा आधा सेर चावल पाकर फूल उठा। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया—"भगवान् अमर रखे मेरे मुन्ने को, बड़ा ओहदा दे।"

इतने में बच्चे की माँ बाहर आई, मुन्ना को भिखमंगे की गोद में देख कर वह एक दम बरस पड़ी—"अँधेर है, भिखमंगा होकर मेरे बच्चे को हाथ लगाता है।"

भिखारी ने एक लम्बी साँस ली और लड़के को नीचे उतार दिया—"जा बेटा फिर कभी आयेंगे !" उसकी आँखों में आँसू आ गये—'हाय-राम !' और वह आगे बढ़ गया। बालक की ममता मानो उसे बार-बार पुकार रही थी, वह सतृष्णा नेत्रों से बच्चे को देखता आगे चला गया।

× ×

घन्टाघर के पास सड़क के किनारे सीधा लेटा एक भिखारी जोर-जोर से छाती पीट रहा है—

दाता राम, दिलादे राम !
बाबू राम, दिलादे राम !

—"देखा माँगने का ढंग !"

—"अरे हजार तरीके होते हैं माँगने के।"

—"छाती पीट-पीटकर ही लोगों को लुभाता है।

—"काम होता नहीं।"

—'माँगने से जो सस्ते में मिल जाता है, तो काम क्यों करें?"

आवाज सुनकर भिखारी बोल उठा—"तीन दिन का भूखा हूँ बाबू, कुछ खाने····।"

—"अरे, यह तो वही गँवार है जो मेरी दुकान के सामने भीख माँग रहा था। चल भूखा है—बहाने बाज!"

—"हाँ, तीन दिन पहिले हमारी मुहल्ले में भी तो आया था। मेरे बच्चे को उठा लिया, कहता था भीतर से कुछ ले आओ?"

—"क्या बच्चे को उठा लिया! अपने राजा बेटा को, इस भिखारी ने!"

—"हाँ, भाई राजा बेटा को!"

—"इतनी हिम्मत! राजा सोनेकी गुंज-उंज तो नहीं पहिने था?"

—"अभी पिछले हफ्ते ही तो उसकी बुआ दे गई थी।"

—"अच्छा, तब तो चोर भी है पाजी।"

—हाँ भाई, राजा की महतारी ने देख लिया नहीं तो शायद गुंज से हाथ धोना पड़ता।"

फिर एक कराहती आवाज आई—"प्यासा मर रहा हूँ बाबू पानी!"

—नौकर हैं तेरे बाप के? देखो तो सही कितना बनता है।"

—"पास के नल से पानी तक नहीं पी सकता।"

—"दया बाबू, थोड़ी सी दया, एक बूंद····प्यासा!"

—"मरता भी तो नहीं प्यासा है तो!"

—चलो भाई, अपने को क्या, माल उतर रहा होगा। कितना समय व्यर्थ गया।"

—बाबू जी! बाबू! दया बाबू!"

—"लो एक पैसा!"

—"पैसा क्या करूँगा बाबू, प्यासा हूँ—भूखा हूँ ! उठने की हिम्मत नहीं है।"

"तो हमने तेरा ठेका ले रखा है क्या ?"

—"चलो क्यों व्यर्थ समय खराब करते हो।"

+ + +

इस तरह वहां न जाने कितने आए और चले गए, किसी ने इस भिखारी की ओर ध्यान तक न दिया, करुणा भी तनिक न पिघली। बेचारा भूखा और प्यासा बुरी तरह तड़प रहा था। जेठ, वैशाख के दिन और १२ बजे का समय, फिर एक पेड़ की छाया भी नहीं ! कोई तो उस पर दया कर लेता ! परन्तु वाह रे संसार ! कितना कठोर है तू, पत्थर ही क्यों नहीं हो गया ? संसार में, मानवता का नाम ही नहीं रहा। एक ओर वे कुत्ते हैं जिन्हें मखमली गद्दों के बिना नींद नहीं आती और दूसरी ओर कुत्तों से बदतर भारतवर्ष के ये भिखारी, जो दर-दर भटक कर भी पेट की ज्वाला नहीं शांत कर सकते।

आखिर तीन दिन का भूखा—प्यासा भिखारी कब तक चिल्लाता, कब तक उसकी शक्ति काम देती, वह बेहोश होकर शांत हो गया। जहां सारा संसार पाषाणवत् कठोर बन जाता है वहाँ प्राणियों की एक मात्र चिरसंगिनी हिमानी सी शीतल गोद वाली मृत्यु समय पर सहारा दे ही देती है। यदि कल्याणदात्री वह न रहे तो संसार के पाप जाने कहाँ तक बढ़ जायें, मनुष्य ही मनुष्य का खून पीने लगे और ऐसे भिखमंगे तो ··· गद्दों पर बैठने वाले कुत्तों का भोजन बनें।

सारा वातावरण जो उस भिखारी के क्रन्दन से गूंज रहा था, शांत हो गया। भीषण दुपहरी की लपटें साय,सांयकर जल उठीं।

"अरे यह क्या, कैसा शांत हो गया है अब ?"

—"हाँ, चिल्लाते-चिल्लाते थक गया होगा।"

—"लेकिन देखो तो मुँह से लार कैसे बह रही है।"

—"यह भी माँगने का एक ढंग होगा !"

—" चलें देखे तो ?"

दोनों ने जाकर देखा, वह भिखारी तो ठण्ढा पड़ चुका था। छेद वाला पैसा अभी भी धूलधूसर पेट पर पूर्ववत् पड़ा मानव की उस मानवता पर हँस रहा था।

—"अरे, यह तो मर गया।"

—"क्या सचमुच प्यासा था ?"

—"जहर-वहर न खा गया हो।"

—"चलो कारपोरेशन में रिपोर्ट कर आयें मिहतरों से बेचारे को श्मशान तक तो भिजवा दें।"

—ऊँह। अपने को क्या पड़ी है, खुद ले जायेंगे। मुझे तो बिल्टी खोलना है। माल नहीं है दूकान में।"

—"मुझे भी तो राशन लाना है !"

—"अच्छा तो चलो !"



अनारकली



"खबरदार अनार ! अभी समय है, एक बार फिर विचार ले ! क्या तेरी आँखों में चर्बी छाई है जो उस नाचीज़ छोकरे के फन्दे में दीवानी हो रही है। देख दो विषम परिस्थितियों के बीच एक साथ तेरी परीक्षा है। एक ओर विष का प्याला है तो दूसरी ओर सुधा का अक्षय-पात्र ! यहाँ तू राजमुकुट की मणि बन जीवन सफल बना सकती है, तू अपने भ्रू-खड्गों से समस्त-पृथ्वी का सञ्चालन कर सकती है, त्रैलोक्य की निधि तेरे चरणों पर न्यौछावर होगी। यह सारा राजपाट, धनदौलत तेरा होगा ! और उसके साथही शाहंशाह, शाहेआलम, जहाँ-पनाह का यह विशाल हृदय

भी तेरा होगा, तेरे चरणों में उसका मस्तक होगा। तू साम्राज्ञी, राजरानी, महारानी आदि नामों से विभूषित हो अखण्ड-भारत की मल्लिका होगी। और वहाँ एक नादान छोकरे का खिलौना बन दर-दर भटकते फिरेगी—इन दोनों में तुझे क्या मंजूर है?"—कहते हुए शाही शयनागृहों में विलास करने वाली अनारकली की ओर भारत-सम्राट अकबर ऐसा झपटा मानों कोई शिकारी शिकार की ओर दौड़ा हो।

[इतिहासकारों ने अकबरी शासन को स्वर्ण-युग के नाम से सम्बोधित कर अकबर की क्रूर वासनापूर्ण भावनाओं पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु वास्तव में अकबर के दर्बार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी अनारकली को उसकी काम-पिपासा के तृप्त न करने के अपराध में अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा था। वह अनार और सलीम! सलीम और अकबर......! लगता है आज भी दो प्यासे प्रेमी एक दूसरे के लिए तड़प रहे हैं]

"खबरदार! बस दूर अकबर, आगे पैर न बढ़ा। अपने करों से स्पर्शकर मुझे अपवित्र न कर। छिः तू अपने को महान् कहता है, श्रेष्ठ कहता है, नीच, दुष्ट! एक अबला पर अत्याचार करते तुझे शर्म नहीं आती। न जाने ऐसी कितनी अबलाओं के जीवन को तूने छल-बलकर मिट्टी में मिला दिया होगा। तू शायद नारी हृदय की उस कठोरता से परिचित नहीं जो अपना प्रतिकार लेने को साक्षात् सर्पिणी बन जाती है! तेरी यह नीचता उसके सामने नहीं टिक सकती"—अकबर के शब्दों का उत्तर अत्यन्त निर्भीकता के साथ अनारकली ने दिया।

अनारकली के अकबर अन्तःपुर की नर्तकी थी। उसमें रङ्ग था, रूप था, इन सबके साथ ही कला के स्रोत से पारिमार्जित हुआ उसका अत्यन्त भावुक एवं सरल हृदय। अंतःपुर की केलि-शालाओं में आकर अपने नृत्य से दर्शकों के नेत्रों को मोह लेती। उसकी साँचे से ढली देह के अङ्ग अङ्ग से माधुरी टपक रही थी। किसलय से कोमल होटों पर विश्राम लेती। उसकी वह मुस्कान और नयनों का बाँकापन किसे आकर्षित नहीं करते!...और मृगों सी चौकड़ी भरता यौवन-उन्मत्त सलीम! वह भी सुन्दर था और वैभव की मादकता में पला सदा उन्मत्त-मतङ्ग की नाईं झूला करता था। मदमाती और बलखाती हुई सरिता की लहरें जैसे लहरों से मिलकर एक हो जाना चाहती हैं, वैसेही यौवन के टेढ़े-मेढ़े रास्ते में भटकने के पहिले सलीम और अनार एक हो जाना चाहते थे। बचपन के दिन साथ बिताये हैं तो फिर जवानी कहाँ बीते? लेकिन अकबर से यह न देखा गया। वैभव उन्मत्त उस सम्राट् की आँखों में भी अनार का चकाचौंध कर देनेवाला यौवन झूल रहा था। पर महलों की साधारण नर्तकी अनारकली और भारत सम्राट्! इनका साथ कैसा! अकबर को मानों अपने पर खीझ उठ रही थी। उसका वैभव उसे ही काट रहा था, लेकिन अनार! वह तो अपने को सलीम के चरणों में अर्पित कर चुकी थी। अकबर के लिए उसके हृदय में कोई स्थान न था। उसे महलों की रानी बनने की साध न थी परन्तु वह प्रेम-पतंग सा अपने आराध्य दीपक की लौ में मिलकर भस्म हो जाना चाहती थी। इसीसे अकबर, अनार के हृदय को न मोड़ सका। जब उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गए तब शयनागृहों में निवास करनेवाली उस नर्तकी को जेल में डाल दिया और उसपर प्रेम–करने का इल्जाम लगाया गया।

एकरात अनार–बन्दीगृह के एक कोने पर बैठी चिन्ता मग्न थी।

सहसा उसने किसी को अन्दर आते देखा। वह सहमी, उठकर खड़ी होगई, देखा तो सामने सम्राट्-अकबर खड़ा था। अनार ने मस्तक झुकाकर अभिवादन किया। अकबर ने सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—"अरी हसीन छोकरी, पागल मत बन, अपने इस यौवन को दर-दर का भिखारी न बना! आँख उठाकर देख भारत-सम्राट् अकबर तेरे प्यार की भीख माँग रहा है! अनार, अकबर के चरणों पर गिर पड़ी—"क्षमा सम्राट्! मैं तो आपकी पुत्र-वधू की तरह हूँ।" अकबर की आँखों से खून बरसने लगा। उसने लात की एक ठोकर मारी और अट्टहास कर बोला—"दरबार की साधारण नर्तकी, महलों की रानी बनने का ख्वाब देखती है! इसकी सजा जानती हो?"

"हाँ सम्राट्"—सिर झुकाकर अनार ने कहा—"इसकी सजा होगी मौत! पर मैं मौत से भी नहीं डरती! मुहब्बत को मौत की दीवार कभी नहीं तोड़ सकी, आलंपनाह! लीजिए मेरा मस्तक झुका है तलवार चलाइए।"

'हा हाहा'—ठहाका मारते हुए अकबर सताये नाग की तरह बोला—"इस तरह मारकर तुझे मैं इतनी सस्ती मुक्ति नहीं दे सकता! जब दर-दर की ठोकर खाती निराश हो टुकड़े-टुकड़े दानों के लिए तरसेगी तब तेरी अक्ल रास्ते पर आयेगी! याद रख अनार, कल सुबह होते ही तुझे यह देश छोड़ देना होगा। प्रातःकाल का सूरज मेरे राज्य की सीमा में तेरे शरीर का स्पर्श न कर सकेगा, बस यही मेरा फैसला है! देखूँ वह दुष्ट सलीम कैसे तेरी परछाईं भी देख पाता है"—और सिरसे पैर तक अनार के उभड़ते यौवन को देखकर—"तू सुन्दर तो है पर हृदय-हीन, इसीसे तुझे जीत न सका"—कहते हुए, क्रोध से अधर फड़फड़ाते अकबर चला गया। संतरियों के जूतों की चर्मर् कारागार के दर्वाजे पर गूँजने लगी।

निर्वासित अनारकली अकेली जंगल-जंगल भटकने लगी। कभी वह घाटियों को पार करती, कभी घने बनों को तो कभी झुरमुट और झाड़ियों को ! कभी चढ़ती-उतरती फिर उतरती-चढ़ती, नदी-नालों को पार करती यहाँ-वहाँ चक्कर खाती रही। उसका शरीर दिन प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा था पर एक अनन्त अभिलाषा उसे जीवित रखे थी। वह थी सलीम के दर्शन की। उसे दृढ़ विश्वास था कि सलीम आयेगा और अवश्य आयेगा, वह भी उसके बिना नहीं रह सकता। इस तरह जाने कितने दिन उसने उन सूनी पहाड़ियों में बिता दिए। इतिहास साक्षी है कि आज से नहीं—युग-युग से अबलाओं पर बराबर पुरुषों का अत्याचार होता आया है, वे उनकी काम-पिपासा और स्वेच्छा-चारिता का शिकार बनी हैं। जिनमें कुछ आत्मबल रहा वे तो किसी तरह पार लग गईं अन्यथा वे उनके मोह जाल का शिकार बनकर नष्ट होगईं। अनार को अपने आप पर भरोसा था। इसीसे अकबर के दरबार का अनन्त वैभव उसकी दृष्टि में तृणवत् बेकार था। वह तो अपने प्यारे प्रीतम को बन-बन ढूँढ़ती-फिरती मीरा की तरह मानों उसके 'खातण जोगण' हो जाना चाहती थी।

× ×

पूर्वाकाश के सुनहले अञ्चल को फाड़ती रवि-किरणें सामने सरिता के गहरे नीले जल में पड़कर अनार के बिखरे केश-पाशों में सिमिटे जाना चाहती थी। अनार अपने बञ्जर-भाग्य क्षेत्र में मोती बोने की कल्पना करती कोमल बालू पर सलीम के ध्यान में मग्न थी। उस शून्य एकान्त में भी उसका मन बुरी तरह उलझा था। वह सोच रही थी—कहीं वह न आया तो......नहीं, वह आयगा ! हे खुदा, बस एक-बार सलीम के दर्शन करने दे, बस, फिर न जीना चाहूँगी और न जीवन से प्यार करूँगी। वह इस तरह की कल्पनायें करती बैठी थी कि

पीछे से किसी ने उसके नेत्र बन्द कर लिए। अनार सिर से पैर तक सिहर उठी। उसे अकबर की शकल दिखाई देने लगी--"दुष्ट, तू यहाँ भी आ धमका!"

"हाँ, आ गया अनार, तुम्हें छोड़कर यह पतंगा और कहाँ जा सकता है।" अनार, सलीम पर एकदम टूट पड़ी। उसकी आँखों से आँसू बरसने लगे--"तुम आ गए सलीम, मैं जानती थी तुम जरूर आवोगे! पर..." एकाएक उसकी वाणी रुक गई। अनार की साधना पूरी हो चुकी थी। दीपक स्नेह-शून्य हो रहा था फिर सूखी बाती में लड़खड़ाती लौ भला कब तक जलती! वह बेहोश होकर नीचे गिर पड़ी। सलीम घबड़ा गया। यह क्या? विष के प्रभाव से अनार बेहोश हो गई थी। सलीम की आँखों के सामने अन्धेरा छा गया, वह अब क्या करे, निस्सहाय था। सामने नदी की इठलाती जलधारा और पक्षियों का स्वर मानों उसपर हँस रहा था।

"क्षमा करो नाथ, मेरे अपराधों को......अब मैं चली....पर,.... पर फिर मिलूँगी सलीम प्रेम अमर है। वह कभी नहीं मरता.......मैंने तो सब पा लिया! तुम लौट जाना सलीम.......तुम्हें भारत का सम्राट् बनना है। मुगलों की गौरव-पताका बनाये रखना। पागलपन से और इसके आगे अनार कुछ न कह सकी, वह चल बसी! सलीम बच्चों की तरह रोता रहा!

बुझे दीप की काली धूम्ररेखा इधर-उधर भटकने लगी जैसे कह रही हो--" तुमने देर कर दी प्रकाश पाने में, स्नेह तो कभी का बीत चुका था।"

पक्षियों के रुदन से सारा वातावरण भर गया!



सुन्दरता का अन्त



एक ओर भारत-सम्राट शाहजहाँ का वैभव के मद में इठलाता भव्य प्रासाद और दूसरी ओर मुगलकाल की गौरव गाथा गाता हुआ निर्झर ! इनके बीच हरे रंग की मखमली दूब का सुनहरा उद्यान जिस पर चाँदनी जैसे हृदय खोलकर लोट रही हो। और उसके किनारों पर लगे भारी-भारी खुशबूदार वृक्ष जिनकी महक से चन्द्रमा की चाँदनी भी शरमाकर आँचल सिकोड़ लेती है। ऐसे ही किसी वृक्ष की छाया में बहुमूल्य रत्नाभूषणों से सुसज्जित शाहजादी अपने को छुपाये खड़ी है ताकि चोर चन्द्रमा उसकी सुन्दरता को न छीन ले। हृदय भीतर ही भीतर बहुत अशान्त है—शायद

उस निर्झर की तरह जो युग-युगों से प्रीत के गीत गाता आज भी प्रीत की देहली छूने के लिए जोर जोर से बिलखता रहता है और वह देहली जैसे मरुस्थल की मृगतृष्णा सी आगे बढ़ती जाती है। शाहजादी अशान्त क्यों है? यह तो वह स्वयं बता सकती है अथवा वह युवक बता सकेगा जो अशोक के झाड़ के पीछे से किसी चोर की तरह छिपकर आया था और जिसने आते ही पीछे से शाहजादी की आँखें बन्द कर ली थी और जब शाहजादी किसी तरह आँखें छुड़ा सकी तो उसने अपने आपको नवयुवक के बाहुपाश में कसा पाया।

"अब इस तरह का मिलना ठीक नहीं है युवक, मैं पराई हो चुकी हूँ। हमारा इस तरह का मिलना खतरे से खाली नहीं।"

"मैं सुन चुका हूँ, तुम पराई हो गई हो। पर इससे क्या मेरा हृदय तो मेरे वश नहीं वह तुममें समा गया है, इसका कोई उपाय?"—और वह एक प्रश्नभरी मुद्रा में उस गौरांगी के गोरे गोरे गालों को अपलक निहारता रहा। शाहजादी ने हाथ छुड़ाने की कोशिश की पर वह न छुड़ा सकी—"यह भावनाओं का ज्वार है युवक, विचार से काम लो। मुझ पर किसी दूसरे का अधिकार है।"

"कभी नहीं हो सकता"—कड़े शब्दों में युवक ने प्रत्युत्तर किया—"दिल बड़ा नाजुक होता है, दूसरे धक्के से वह टूट सकता है। वह भावना से तो चलता है पर भावना विचार की—पृष्ठगामिनी है इसलिए दिल कमजोर और भावनामय होते हुए भी विचार की लौह-शृङ्खला में आबद्ध रहता है। मैं तुम्हें अपने प्यार की याद दिलाने आया हूँ। महलों के वैभव में पड़कर तुम कदाचित मुझे भूल रही हो....।"

"नहीं...." शाहजादी के उत्तर में घबड़ाहट थी। शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था और साँस की गति-तीव्रता से बढ़ती जा रही थी—"यहाँ से भाग जाओ युवक मेरी विवशता पर ख्याल करो!"

हा ! हा ! हा ! हा !—युवक का अट्टहास सारे उद्यान में गूँज उठा—"बेहया, मैं मूर्ख था जो पागल की तरह तुम्हारे साथ सुनहरे घरौंदे बनाता रहा। तुमने मेरे प्रेम का मजाक उड़ाया है पर खबरदार, प्रेम के इस मशाल को सरलता से बुझा नहीं सकतीं।"

शाहजादी किसी कैद किए हिरनी की तरह घबड़ाई और विवश युवककी ओर देख रही थी। वह चाहती थी कि युवक को समझाये पर मुँह बन्द था—जैसे शब्द बाहर निकलने में लजाते हों। युवक ने शाहजादी को झकझोरा, वह काँप उठी जैसे किसी झंझावात के आघात से कोमल लतिका काँप उठती है। उसके अंग अंग में सिहरन भर गई। पुरुष के स्पर्श ने उसे लजवन्ती सा कुम्हला दिया। युवक भी घबड़ाया सा था—उसे अपनी आशा की झोपड़ी में निराशा के महलों के अंकुर दिखाई दे रहे थे। उसकी आँखों में आँसू आ गए तभी वह एकबारगी चिल्ला उठा—

—"तुम उससे प्यार करने लगीं इसलिए न कि उसके पास सोना है, चांदी है, हीरे और जवाहिरात हैं और विलास-वैभव की मनचाही सामग्री। पर मेरे पास एक गरीब कलाकार का हृदय है। हाथ में कठोर हथौड़ा है पर हृदय में तुम्हारे प्यार का भावना-सिन्धु जो केवल तुम्हारे शरीर की खुबसूरती को नहीं देखता परन्तु तुम्हारी आत्मा से आलिंगन करता है। मैं तुमसे प्यार करता हूँ, शाहजादी और तुम भी मुझसे करती थी पर अब इस सौदे के बीच यह कौन नया व्यापारी....।"

"चुप बेशरम" शाहजादी ने कहा—"कोई सुन लेगा, छोड़ दो नहीं तो मैं चिल्ला दूंगी।"

युवक मुस्कराया, उसकी मुस्कराहट में एक कसक थी और साथ ही घृणा भी—"चिल्ला दो सुन्दरी, इससे मेरा क्या बिगड़ेगा। तलवार के घाट उतार दिया जाऊँगा—बस न? पर मत भूलो परवाना मरने के लिए

नहीं डरता, वह यदि डरता है तो केवल इसलिए कि उसकी शमा न बुझ जाये।" कहता चला गया।

× × ×

ईरान के एक बड़े शहर में फूस के झोपड़े के सामने, एक झाड़ की 'धूप-छाँव' के नीचे बैठा एक शिल्पकार किसी की मूर्ति बनाने में व्यस्त है। कभी वह अपने भारी हथौड़े से मूर्ति को चोट पहुँचाता है, कभी छैनी से काटता है तो कभी उसका चुम्बन करता है! लगता है जैसे पत्थर में वह अपने हृदय की किसी तस्वीर को खींचना चाहता हो। कपड़े बिलकुल अस्त-व्यस्त हैं, उसी तरह बाल भी धूल में सने हैं, पर उसे इनकी कोई चिन्ता नहीं है। लोग वहाँ से निकलते हैं—दो एक क्षण खड़े हो जाते हैं। कोई पूछता है—"क्या बना रहे हो शिल्पी?"

शिल्पी चुपचाप मुँह का पसीना पोंछ कर काम में लग जाता है, कोई उत्तर नहीं देता।

दुपहरिया ढलने को है। सूरज सिर से खिसक कर दो एक सीढ़ियाँ पार कर चुका है। आकाश के सिर की धोती पकड़ कर सारे संसार को देखने की उसकी चाह जैसे पूरी हो गई परन्तु कारीगर अभी तक व्यस्त है, जाने उसकी चाह कब पूरी होती है? लोग तो उसे पत्थर के साथ खेल करने वाला पागल समझते हैं।

शिल्पी ने अपना सिर हिलाया। पसीने की दो चार बूँदे उसके अधरों पर गिरीं। उसने उन्हें अपनी जीभ से चाटते हुए अपार आनन्द का अनुभव किया। इसी समय दूर पूरब दिशा से घोड़े की टाप सुनाई दी। कारीगर ने उठकर देखा, एक ऊँचे अरबियन घोड़े पर एक सवार तीव्रगति से दौड़ते चला आ रहा था। सामने के मैदान में पहुँच कर सवार ने घोड़े की रास ढीली कर दी। लोगों ने उसे घेर लिया।

"बेतहाशा भागे आ रहे हो ?"–एक व्यक्ति ने पूछा जब तक सवार उत्तर देता कि दूसरे ने कहा–"हिन्दुस्थान का दीखता है।"

तभी शिल्पी ने सामने आकर घोड़े की रास थामी और कहा—"आराम करो सवार, तुम हिन्दुस्तान से आए हो, जहाँ आदमी नहीं देवता बसते हैं। तुम्हारी रक्षा हिमराज हिमालय करते हैं, गोद में गंगा-यमुना अमृत लिए बहती हैं। हम तो वीरान देश के वासी हैं, जहाँ पसीने को पानी बनाकर पीना पड़ता है।"

सवार चुपचाप खड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू गिरकर रेत में मिलने लगे। शिल्पी ने कहा—"कायर बनते हो क्या लम्बी यात्रा से थक गये ?"

"नहीं"—सवार ने गर्व से उत्तर दिया।

"फिर ये आँसू ?"

"गाज गिर गई हिन्दुस्तान पर। वहां का रत्न चला गया और दुनियां से जिन्दगी चली गई। मलकालम....?"

"कौन, शाहजादी चल बसी ?"—शिल्पी ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ"—और सवार से न रहा गया, वह रोने लगा।

"शाहजादी दुनियां में नहीं रही, शाहजहां का दिल टूट गया ?"—जनता में एक हलका सा स्वर फैल गया। शिल्पकार दो-एक पल मौन खड़ा रहा फिर उसने सिर हिलाया और जोर से हँसा—"चलो अच्छा हुआ ! सवार, तुम जाकर सवार से कहना मैं शाहजादी को अमर बनाऊँगा।"

शिल्पी अपनी झोपड़ी में चला गया। अंदर जाकर उसने मूर्ति उठाई और उसका चुम्बन किया—"तेरा अंत हो गया पाषाणी ! पर हर सुन्दरता का अंत भी यही होता है ! तूने मुझे जिन्दगी भर तड़पाया

रानी पर मैं तुझे अमर बनादूंगा।"—और एक लम्बी आह उसके मुँह से निकलकर उस छोटी सी झोपड़ी में डूब गई!

+ +

एक विशाल ड्राइंगरूम में शाहजहाँ बेतहासा कुम्हलाये एक कोच पर बैठे हैं। चारों ओर अखंड शांति छाई है। मौत का फंदा भी कितना भयानक और बेरहम होता है। राजवैभव के असंख्य साधन भी शाहजादी को मौत के शिकंजों से न छुड़ा सके। तो फिर यह सारा वैभव किस काम का! मैं राजपाट छोड़कर दुनियां की वह मिट्टी चूमने क्यों न चला जाऊँ जिसमें मेरे दिल के अरमान सो रहे हैं!—सहसा एक सैनिक ने शाहंशाह की विचारधारा तोड़ी—"एक शिल्पी हुजूर से मिलना चाहता है।" शाहंशाह सम्हलकर बैठ गए, मुंह पर हाथ फेरा और शिल्पी को अंदर आने की इजाज़त दी।

फटे कपड़े पहिने, नंगे पैर एक पागल सा युवक सामने हाजिर हुआ। शाहंशाह ने सिर से पैर तक उस दरिद्र कलाकार पर दृष्टि डाली—"तुम्हारा परिचय!"

"मैं ईरान का एक साधारण सा कलाकार हूँ"—शिल्पी ने अदब के साथ सिर झुकाकर कहा।

"तुम क्या चाहते हो?"

"कला की प्रतिष्ठा"—कलाकार का उत्तर था।

"हम तुम्हारा मतलब नहीं समझे युवक—" शाहंशाह ने पूछा।

"गुस्ताखी माफ हो जहांपनाह—" शिल्पी ने सिर झुका दिया—"मल्लिकालम की मौत ने इस कलाकार का दिल तोड़ दिया है। जाने अब जिंदगी कितने दिन चलती है। मैं चाहता हूँ कि मरने के पहिले अपनी जिन्दगी की सबसे बहतरीन और अंतिम कलाकृति बना दूँ

कुछ दिनों के बाद—ताजमहल की आलीशान इमारत हीरों से जगमगा उठी। एक पागल ने गर्व के साथ अंदर प्रवेश किया और यहाँ वहाँ घूमता वह ठीक मकबरे के सामने जा पहुँचा। जाते ही उसने संगमरमर के ठंडे पत्थरों पर अपना माथा टेक दिया और फिर तनकर खड़ा हो गया—"आज मैं खुश हूँ रानी, मैंने तुम्हें योग्य स्थान पर बैठाया है। इन पत्थरों को देखकर लोग तुम्हारे स्वभाव को पहिचान लेंगे। पर एक बात कह दूँ रूपेन्द्री! तुम जन्नत से झाँककर देख लो—धनिकों का प्रेम पत्थर में रहता है लेकिन गरीब का उसके हृदय में! तुम चली गई, अपनी सुन्दरता को समेटकर इस मकबरे में सो गई। एक दिन मैं भी चला जाऊँगा अपना तड़पता दिल लेकर और किसी ऐसे निर्जन में दफना दिया जाऊँगा जहाँ शायद पक्षी भी मेरी मिट्टी की गवाही न दे सकेंगे। पर विश्वास रखो शाहजादी मेरा दिल यहीं तुम्हारे पास तुम्हारे मकबरे में आकर सोयगा—तब देखूँगा, तुम्हारी दौलत उसका क्या बिगाड़ सकती है"—और शिल्पकार एक गहरा अट्टहासकर उठा। उसकी प्रतिध्वनि सारे भवन में गूँज उठी, दो चार पहरेदार दौड़े—"कौन पागल? पकड़ो इसे!" पर वह पागल पकड़े जाने के पूर्व ही उनकी पकड़ के बाहर हो चुका था।



भोला



मेरे घर के सामने एक नन्हेंसे फूसके झोंपड़े में भोला रहा करता था। बिलकुल कोयले-सा काला, दो भयानक आँखें जैसे बाहर निकली पड़ती हों, जंगल जैसे बिखरे बाल, धूल में सना नंगा शरीर और हाथ में एक डंडा भोला की विशेषता थी। दुबला-पतला शरीर और पिचका हुआ पेट अभाव तथा क्षुधा से ग्रस्त उसके जीवन का प्रत्यक्ष प्रतीक था। उसका स्वभाव भी बड़ा उग्र था। बात-बात में चाहे जिससे नाराज़ हो जाता और मारने दौड़ पड़ता। उसकी इसी आदत के कारण ही बच्चे अक्सर उसे सताया करते थे। गदेली पर मुंह से 'बम्म भोला' का एक तेज़ नारा लगाते कि भोला

पत्थर लेकर उनकी ओर दौड़ पड़ता। कोई उसे पागल कहकर पुकारता तो भी भोला उसी तरह का व्यवहार करता।

भोला न तो कोई काम-धाम करता और न भीख माँगने जाता। माँगना तो मानों पाप समझता था। आसपास के पड़ौसी यदि उसे कभी कुछ खाना देने आते तो वह गाली-गलौज बकता और पत्थर लेकर उनकी ओर दौड़ा करता था। फिर भी लोगों को उसपर तरस आता और जब वह यहाँ-वहाँ चला जाता तो वे उसकी खाट के पास खाना रख आया करते। भोला जब आता तो चुपचाप खा लेता। उससे लोगों को बड़ा आश्चर्य होता। वे कहते "बड़ा अजीब आदमी है। जब कोई प्रेम से देता है तब तो गाली-गलौज करता है और चुपचाप दो तो साफ भी कर जाता है।" बात सच थी। शायद वह भीख मांगकर किसी की दया का पात्र नहीं बनना चहता था और न किसी का अहसान ही अपने सिर रखना चाहता था।

भोला दिनभर शराब के नशे में चकनाचूर रहता। नशे में मस्त उसकी लाल-लाल आँखों से मानों खून टपक रहा हो। शायद इसी सुरा का कारण है कि भोला पर ऋतुयें अपना प्रभाव नहीं कर सकतीं। चाहे गर्मी हो, ठंड हो, चाहे बरसात भोला को न तो कभी ठंड की जरूरत पड़ी और न आग की। एक टूटी सी खाट में वह अवधूत की तरह पड़ा रहता और रातभर सुख से खुर्राटें भरा करता था। इसी कारण कुछ धार्मिक प्रवृत्ति के लोग उसे भगवान् भोले शंकर का अवतार" समझ कर मन ही मन उसकी बड़ी इज्जत किया करते थे।

सुबह और शाम भोला प्रायः जोर जोर से गाना गाया करता था। क्या गाता था, इसका पता लगाना बहुत कठिन था। शायद वह स्वयं इसका अर्थ न बता सकेगा! इससे आसपास के मुहल्लेवाले बड़े परेशान

थे। जब कोई निकलकर उसे डांटता और कहता—'क्यों रे भोला, गाना नहीं बन्द करेगा?" तो वह तपाक से जवाब दे देता—"नहीं करूंगा, तुझे क्या है! हम गायेंगे और खूब गायेंगे।" और फिर वह अपने स्वरों को और भी विकराल बना लेता। दोपहर को अक्सर भोला अपनी खाट बाहर लेकर आता और चुन-चुनकर खटमल मारा करता था। खटमलों को वह हाथ से मिसलता और मिसलकर सूंघने लगता। उस समय उसकी एक अजीब मुखाकृति बन जाया करती थी। पड़ोस की कोई महिला जब बाहर आकर कहती—"यहाँ खटमल मत मारो, भोला!" तो वह चट बोलता—"मारेंगे, खूब मारेंगे। जाओ, हमारी शादी थोड़े हुई है।" और उसे बड़ी देर तक दुहराता रहता। उलाहना देने वाले को भी अंतिम वाक्य सुनकर बड़ी हँसी आ जाती, पर भोला को मानों किसी की हँसी से बड़ी चिढ़ थी। यदि किसी स्त्रीको हँसते देखता तो अपनी बत्तीसी निकालकर उस ओर दौड़ पड़ता और कहता—"दांत उखाड़ लूंगा, हमारी शादी थोड़े हुई है।" शायद भोला का विवेक इतना विवेकशील था कि वह अपनी दरिद्रता की थाह भलीभाँति जानता था और इसीसे दूसरों की हँसी उसे काँटे की तरह चुभा करती थी, परन्तु फिर भी सब कुछ गरल की भाँति पीकर "दांत उखाड़ लूँगा" इन दो-चार अक्षरों से ही वह मानों अपना उफान निकाल देता था।

भोला को जानवरों से बड़ा प्यार था। कुत्तों को तो वह अपने साथ खाना खिलाता। एक ही थाल पर भोला और कुत्ते खाना खाते और इससे उसे बड़ी शांति मिलती। रास्ता चलते यदि कोई आदमी कुत्ते को भगाने लगता तो भोला तुरन्त उसकी ओर पत्थर लेकर दौड़ पड़ता। फिर उस कुत्ते को पुचकारता और उससे माफी मांगता। संसार उसकी इस मूढ़ता पर हँसता पर भोला को उसमें ही आनन्द आता। आखिर

आए क्यों नहीं, गरीबी और दीनता ने उसे जकड़ रखा था, समाज ने ठोकर लगाकर त्याग दिया था, फिर वह किससे प्रीति करे ? भोला शायद यह जानता था कि मित्रता बराबरीवालों से होती है और उस समय कुत्ते से बढ़कर और कौन बराबरीवाला उसे मिल सकता था ? न तो उसके भाई थे, न भाभियाँ थीं। फिर भोला की यह दशा क्यों होती ? कहते हैं उसका भी कोई जमाना था। गाँव भर में भोला के नाम की माला जपी जाती थी। भोला ढोर चराने का काम करता। गाँव के सारे जानवरों को ले जाकर घास की लहलहाती सुन्दर घाटियों पर चराया करता। उसके पास एक बाँसुरी थी। बस, दिन भर उसके साथ खेलता बाँसुरी की तान जङ्गल के कोने-कोने में समा जाती और उसकी मिठास से पशु-पत्ती तक मोहित हो जाते। उसने जानवरों को कभी डंडे से नहीं मारा। जब उसे हाँकना होता तब वह एक गहरी तान छेड़ता और सारे जानवर अपने आप एकत्रित हो जाते। उसकी मुरली में मोहन का मनोमुग्धकारी जादू था, हृदय में ग्वालों का निश्छल प्यार था और अधरों पर गोपिकाओं की किसलय-सी कोमल मुस्कान थी। इस तरह भोला का जीवन चिंता-फिकर से दूर अलमस्त बीतता था।

थोड़े दिनों के बाद भोला की शादी हो गई उसकी खुशियाँ, उमङ्ग में न समा सकीं। पर यह सुनहला संसार उसके लिये मृगतृष्णा बनकर आया। शादी के बाद ही भोला के परिवार में गृह कलह की भीषण आग फूट पड़ी। और जब थका-माँदा भोला जङ्गल से लौटता तो माँ एकदम उलाहना देने लगती—"तू अलग क्यों नहीं रहता ? ऐसी कुलच्छिनी बहू मेरे घर में नहीं रह सकती।" उसकी बड़ी भाभी अलग कहती दिन-रात की कट्-कट् हमें नहीं सुहाती।" इसी समय उसकी पत्नी अपनी पीठ में पड़ी बेतों की लकीरें दिखाकर रोने लगती पर उसकी सुननेवाला कौन था। भोला को विवश हो उन लकीरों में दो चार की और वृद्धि करनी

पड़ती। पर इसके बाद भोला को बडा पश्चाताप होता और वह उस दिन खाना भी न खाया करता। इस तरह दिन बीतते गए। जब भोला की पत्नी अधिक न सह सकी तो कुएँ में डूबकर मर गई। इससे भोला को बड़ी चोट पहुँची और इसी कारण उसका दिमाग भी बिगड़ गया। अब वह न तो ढोर चराने जाता और न कोई काम करता। इस पर उसकी बड़ी भाभी कहती—"देखा नहीं निखट्टू को! दिनभर बैठा-बैठा खाता है। काम-धाम होता नहीं।" और उसका भाई उसे दो-चार लातें लगा कर चल देता। भोला रोता-सिसकता चुपचाप पड़ा रहता। जब उसके भाइयों ने देखा कि लातों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता तो उसे घर से निकाल दिया। उसके कपड़े-लत्ते छीन लिये। बेचारा भोला भूखा-प्यासा एक पीपल की झाड़ के नीचे पड़ा रहता। कोई उसे खाना भी न दे सकता। जो देता, भोला की बड़ी भाभी गालियों से उसकी मरम्मत करती। धीरे-धीरे वह इस दशामें पहुँच गया। तब कहीं किसी ने उसे इस झोपड़ी में रहने दिया। पर अब समय जा चुका था। 'का वर्षा जब कृषि सुखानी'—भोला अपना मनुष्यत्व खो चुका था! वह पशुओं से प्यार करने लगा था क्योंकि पशुओं के बीच उसका जीवन बीता था। उनकी ममता को वह भलीभाँति समझता था। आज भी भोला यदि किसी गाय या बैल को बुलाता तो वे दौड़े उसके पास चले आते। उस समय उन जानवरों की आँखों में भी दो चार प्रेमाश्रु उतर आते थे। पर पशुओं को भोला के पास जाने के अपराध में अपने मालिकों के डंडे भी खाना पड़ते। वे सोचते पागल है, कहीं जहर-वहर न दे दे। पर भोला पशुओं के प्रति अपने प्रेम को काबू में न रख पाता। जब कभी उसका हृदय उनके लिये लालायित हो पड़ता तो वह जिस किसी घर में कोई बछड़ा बँधा देखता चुपचाप छोड़ लाता, उसे चाटता-चूमता और गा-गाकर नाचने लगता, मानों उसकी प्रसन्नता उसके काबू

के बाहर चली जाती। गाँव के बच्चों के लिये यह तमाशा बन जाता। वे इकट्ठे होकर भोला की ओर पत्थर फेंकते और 'बम्म–भोला' कहकर चिढ़ाने लगते। जब वह किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता तो ये छोटे-छोटे बच्चे उसे क्यों तंग किया करते हैं? उसका रोम-रोम विद्रोह कर बैठता। वह ईंट पत्थर लेकर उन्हें मारने दौड़ता और यदि किसी को पकड़ लेता तो उसके हाथ में दाँतों से काट लेता। वह लड़का रोते-रोते घर चल देता पर अन्य लड़के खूब हँसते। इतने में कोई भोला को उसका बछड़ा लिए देख लेता तो डंडा लेकर भोला की तरफ दौड़ पड़ता। पर भोला सहज ही बछड़े को न छोड़ता। आखिर दो चार डंडे उसे बछड़ा छोड़ने को बाध्य करते, पर डंडा खाकर भी भोला कभी नहीं रोया, कभी एक आँसू भी उसकी आँखों से नहीं निकला। आखिर निकलता भी कैसे, प्रकृति ने उसे अपनी गोद में पालकर सब कुछ सहने के लिये दृढ़ बना दिया था।

एक दिन भोला चारपाई पर पड़ा था। पड़े-पड़े वह गाना गा रहा था। एकाएक उसे अपने बछड़े की याद आ गई। वह उसे सबसे ज्यादा प्यार करता था और उसे 'लालू–भइया' कहकर पुकारता था। भोला अपने घर की ओर दौड़ा और सार से बछड़े को छोड़ लाया। जब उसके भाई ने देखा तो वह डंडा लेकर उसकी ओर दौड़ पड़ा। भोला ने भी उसपर पत्थर और धूल फेंकना शुरू कर दिया। साथ में वह गाली-गलौज भी देता जाता था। आखिर क्यों न दे, क्या उसे अपने प्यारे बछड़े को भी खिलौने का अधिकार नहीं है? देखते-देखते आसपास कई लड़के इकट्ठा हो गये और एक खासा बाजार सा मच गया। उसके भाई का गुस्सा बढ़ता जा रहा था। भोला तो फूटी आँखों उसे नहीं सुहाता था। आखिर उसने एक पत्थर का ढेला भोला को फेंककर मारा। पत्थर का ढेला उसके सिर से टकराकर जमीन पर गिर पड़ा।

भोला खून से लथपथ हो गया पर उसने अपने 'लालू-भइया' को न छोड़ा। भोला आखिर मनुष्य ही तो था, उसकी चेतना शक्ति अधिक देर साथ न दे सकी, वह जमीन पर गिर पड़ा और धीरे धीरे बेहोश हो गया। बछड़े की डोर हाथ से छूट गई। जब लोगों ने यह देखा तो भोला की ओर दौड़े। किसी ने कहा—चलो अस्पताल ले चलें, पर भोला ने सिर हिला दिया। उसने गरदन उठाई और धीरे से 'लालू' कहकर पुकारा। लालू अभी भी वहीं खड़ा था। वह भोला के अधिक पास आकर खड़ा हो गया। भोला ने उस पर हाथ फेरा। इसी समय दो-चार आँसुओं की बूँदे उसके नेत्रों से नीचे गिर पड़ीं। शायद आज पहिली बार लोगों ने भोला की आँखों में आँसू देखे। सहसा भोला ने लम्बी साँस ली, उसका मुख चमक उठा और एक गहरी शान्ति चेहरे पर चमकने लगी। फिर भोला मुसकुराया, पर उसकी इस मुसकुराहट में एक अजीब कडुवापन था, एक अजीब उपेक्षा थी। दूसरे ही क्षण लोगों ने देखा कि भोला का लथपथ मुँह धूल चाटने लगा। वह अखंड शान्ति की गोद में जा विराजा। उसका मुखमण्डल शान्ति के तेज में चमक रहा था। क्यों न हो, भोला के अरमान ही अब क्या बचे थे? उसे जीवन से क्या मोह था? मृत्यु दूसरों को चाहे कितनी भी भयानक हो पर भोला के लिये वह सचमुच मुक्ति थी।



जंगली फूल

बहुत पुरानी बात है श्याम में एक अत्यन्त रूप, एवं कलावान राजकुमार रहता था। जब वह कुछ होशियार हो गया तो उसके माता पिता ने उसे विद्याभ्यास के लिए, राज्य से कोसों दूर उस समय के सबसे प्रख्यात मुनि के पास भेजा। वहाँ वह अनेक वर्षों तक कई प्रकार की विद्यायें सीखता रहा। जब वह सब विद्या सीख चुका तो एक दिन मुनि ने कहा—"हे वत्स! अब तुम्हारी सारी शिक्षा पूरी हो गई और अब मैं चाहता हूँ कि बन की इन यातनाओं से मुक्ति पाकर तुम अपने घर लौट जाओ, परन्तु जाने के पूर्व तुम्हें कार्य करना होगा। तुम बन जाओ और तुम्हें जहाँ भी एक



ऐसा खिला हुआ फूल मिले जो तुम्हारी भावना को सबसे ज्यादा आकर्षित करे, उसे तोड़कर मेरे पास ले आओ। परन्तु देखो फूल तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना कि वृक्ष की अन्य शाखाओं को कोई हानि न पहुँचे और वह फूल भी सुरक्षित रहे। तुम्हें आज शाम तक वापिस आना है परन्तु बिना फूल लिये वापिस नहीं लौटना।"

राजकुमार मुनि की आज्ञानुसार ऐसे मनोमुग्धकारी और सुन्दर फूल की खोज में बन की ओर चल दिया। उसने सारा बन छान डाला परन्तु उसे उसकी भावना को आकर्षित करनेवाला पुष्प कहीं न मिला। बन में अनेक तरह के फूल थे परन्तु उनमें कई बहुत दिनों के फूल होने के कारण मुरझा गए थे और कई अभी कलि रूप में ही थे। हताश राजकुमार ने पहिले तो सोचा कि—अच्छा हो मुनि से जाकर कह दिया जाय कि उसके मन का बनमें कोई फूल ही नहीं है परन्तु जब उसे मुनि के शब्द याद आए कि—बिना फूल लिए वापिस नहीं लौटना, तब वह गहरे झमेले में चक्कर खाने लगा। तभी उसे घने पत्तों के बीच एक सफेद वस्तु चमकती सी दिखी। वह उस ओर उत्सुकता से दौड़ा परन्तु जब उसने पत्तों के बीच से उसे निकाला तो देखा कि वह तो एक बेकार जङ्गली पौधे का फूल था। राजकुमार ने चिन्ताभरी एक गहरी साँस ली। इस समय सूर्य की लालिमा सिमट चुकी थी और सन्ध्या रानी साँवले केशपाशों को सम्हाले द्रुतगति से उस बन में उतर रही थी। चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। राजकुमार घबड़ा उठा और आगे बिना कुछ सोचे बिचारे उसी फूल को लेकर कुटी की ओर चल दिया।

उस जङ्गली फूल को देखकर मुनि का चेहरा एक दम पीला पड़ गया परन्तु अपने भावों को छिपाते हुए बोले—"क्या इसी ने तुम्हारी भावना को सबसे ज्यादा आकर्षित किया था?"

राजकुमार ने नीचे सिर झुकाकर उत्तर दिया—"जी नहीं, परन्तु बन में इसके सिवाय कोई फूल ही न था।"

मुनि राजकुमार को आराम करने का आदेश दे अपनी कुटी में चले गए और उस पूरी रात उस सफेद फूल की पंखुरियों से एक अजीब सा मिश्रण बनाने में व्यस्त रहे। बीच बीच में जब कभी उनकी दृष्टि राजकुमार की कुटी में पड़ती तो भावी अनिष्ट का एक काल्पनिक चित्र उनकी आँखों में खिंच जाता और वे काँप उठते।

धीरे धीरे सूरज ने आकर पूरब के द्वार खोले और इसी समय राजकुमार भी मुनि की आज्ञानुसार उपस्थित हुआ। मुनि ने राजकुमार को चांदी का एक छोटा सा सन्दूक देते हुए कहा—"वत्स! यह लो अपने गुरु की अन्तिम बिदाई। यही तुम्हारे भाग्य का फल है। परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम इस सन्दूक को अपने पिता के राज्य की सीमा पर पहुँचने के पश्चात् खोलो।" इस समय मुनि की आँखों से कुछ आँसुओं की बूंदें भी निकल आईं—"भगवान् तुम्हारा कल्याण करे!"—और फिर मुनि से वहाँ अधिक देर न ठहरा गया।

× ×

रास्ते में नाना तरह की पहाड़ियाँ, घाटियाँ, नदी नालों को पार करते राजकुमार बढ़ता जा रहा था। भविष्य में प्राप्त होने वाले राजकीय ऐश्वर्यों की कल्पना उसकी राह को आसान बना रही थी। अब तक सूर्य उसके सिर पर पहुँच चुका था। रास्ते के एक सुन्दर झरने के किनारे, शीतल छाया के नीचे बैठकर राजकुमार प्रकृति के इस मधुर सङ्गीत का रसास्वादन करने लगा। थोड़ा बहुत भोजन करने के बाद उसका ध्यान एकाएक चांदी के उस छोटे से सन्दूक की ओर गया और तभी वह सोचने लगा—यह सन्दूक ही मेरे भाग्य का फल है फिर मुनि

ने इसे बीच में खोलने की मनाई क्यों की ? और आश्चर्य तो यह कि जो मुनि हर समय आज्ञा देते थे इस समय उन्होंने केवल सलाह ही दी। कुछ भी हो, यदि मैं अपने भाग्य को यहीं देखलूँ तो हर्ज क्या ? और राजकुमार ने धीरे से सन्दूक खोल ही ली। सन्दूक खोलते ही उसे उसमें से एक ओसकण दिखाई दिया। उसे देखकर राजकुमार खिलखिलाकर हँस पड़ा परन्तु सहसा उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि वही ओसकण धीरे धीरे एक बादल के रूप में परिणित होता जा रहा है और उसके बीच से इन्द्रधनुषी रङ्गों में एक अत्यन्त रूपवती राजकुमारी निकली। वह फूल से भी कोमल और मधुमास के सुनहले प्रात से भी सुन्दर थी। उसने घूमकर चारों ओर अपनी अलसाई आँखों से देखा। राजकुमार की तो प्रसन्नता की सीमा न रही और वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है—यह सब भूल गया। अन्त में राजकुमार यौवन मुकुल के मकरन्द से उन्मत्त उस राजकुमारी का, जीवन के पावन प्रभात में सुनहली किरणों सा पुलकित प्रेम पाता लगातार चार दिनों तक उसी झरने के किनारे पड़ा रहा। पाँचवें दिन राजकुमार को अपने घर चलने की याद आई क्योंकि अब उसके पास का सारा भोजन समाप्त हो चुका था।

राजकुमार की यात्रा का यह अन्तिम सुहावना स्थल था, इसके बाद उन्हें एक विशाल मरुस्थल पार करना है। रास्ते में अब जङ्गली फल, फूल और कटीली बेरों के झाड़ तक नहीं मिलेंगे—फिर कैसा होगा ?—इस चिन्ता से व्याकुल राजकुमार उस नयी राजकुमारी के साथ चल पड़ा।

दिन चढ़ता गया और सूर्य की गर्मी एक धधकते अङ्गार की तरह उन्हें दग्ध करने लगी। भूख और प्यास से राजकुमार की हालत तो ढीली पड़ ही रही थी, राजकुमारी के तो बुरे हाल थे। उसके पैरों में

छाले पड़ गये थे। और प्यास से व्याकुल उसका मुँह किसी पपीहे की तरह 'पानी' की रट लगा रहा था। राजकुमार ने अपनी पत्नी की यह दशा देखकर उसे अपनी कंधों पर बैठा लिया परन्तु पानी की समस्या अब भी हल न हो सकी। उस विशाल मरुस्थल में रेत के भारी मैदान के मध्य यत्र तत्र केवल मृगतृष्णा ही चमकती दिखाई दे रही थी। जब राजकुमार को अपनी पत्नी की तृष्णा असह्य मालूम हुई तो कटार से उसने अपनी एक नस काट डाली और उसके निकले रक्त की धार को अपनी प्रियतमा के सूखे अधरों में लगा दिया। उस मधुर रक्त का पान कर राजकुमारी को कुछ सान्त्वना मिली परन्तु दुर्दैव, जो उससे पीछे पड़ा था, एक भारी आपत्ति लेकर आया।

+ +

एक विशालकाय, आकाश को छूता, पुरुष उन्हें दिखाई दिया जो द्रुतगति से उनकी ओर बढ़ा चला आ रहा था। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग काँप रहे थे। राजकुमार को यह पता लगाते देर न लगी कि उसे मरु-स्थल के उन डाकुओं में से होना चाहिए जो यात्रियों की धन दौलत ही नहीं छीन लेते अपितु यात्रियों के प्राण तक ले डालते हैं। देखते ही देखते वह उनके पास आ गया और राजकुमार के साथ गुलाब सी सुन्दर राजकुमारी को देखकर उसकी जीभ में पानी आने लगा। इस समय राजकुमार अपने सारे दुःखों को भूलकर अपने और अपनी पत्नी के प्राणों की रक्षा के लिए राक्षस के पैरों पर गिर पड़ा परन्तु वह क्रूर और लालची राक्षस तिलभर भी न पिघला। वह राजकुमार पर आघात करने लगा। अपनी कटार से खून निकलने के बाद राजकुमार के शरीर में जो घाव रह गया था उसमें रेत भर गई और वह नमक का काम करने लगी। राक्षस के पंजों में तड़पता राजकुमार जब अपने को बिल-कुल असमर्थ पाने लगा तो उसने अपनी पत्नी से कटार याचना की।

राजकुमारी भय से भयभीत अपने स्थान से तिलभर भी न हिली। वह रेत के एक टीले पर बैठी अपने सामने हो रहे इन दो मूर्खों के युद्ध को अपलक देखती रही। राजकुमार ने कराहते हुए फिर एक बार कटार माँगी। अब राजकुमारी कटार लेकर धीरे धीरे उसकी ओर बढ़ी पर राक्षस ने बीच में ही कटार छीन कर राजकुमार को यमलोक पहुँचा दिया और राजकुमारी को पकड़कर छाती से लगा लिया।

लगातार तीन दिनों तक राजकुमारी उस राक्षस के विलास की सामग्री बनी रही परन्तु चौथे दिन जब राक्षस की काम वासनायें ठंढी हो गई तब उसने राजकुमारी को धक्का देकर हटा दिया और कहा—"क्या तू सचमुच मेरी हो सकती है? जिस राजकुमार ने तेरे लिए इतनी यातनायें सहीं और तेरी प्यास बुझाने के लिए अपना खून तक दिया— परन्तु तूने उसका भी उपकार न माना और उसकी मौत अपने सामने हँसते हुए देखती रही। तेरे विष बुझे नेत्रों से करुणा के दो आँसू तक न निकले। तू सचमुच राक्षसी श्रेणी के भी लायक नहीं है! जा अब तेरा यहाँ कोई ठिकाना नहीं, तू एक दिन मुझे भी धोखा दे सकती है।" इतना कहकर राक्षस, राजकुमारी को अकेला छोड़कर चला गया। राजकुमारी एक हारे जुआड़ी की तरह राक्षस की ओर उस समय तक देखती रही जब तक वह आँखों के ओझल नहीं हो गया।

अकेली राजकुमारी निराश हो जहाँ भी दृष्टि दौड़ाती रेत ही रेत दिखाई देती। उस रेतीले क्षेत्र के मध्य खड़ी वह अपनी स्थिति भी समझने में अपने को असमर्थ पाती। धधकती गर्मी और तवा सी तपती रेत उसके सारे शरीर को झुलसा रही थी। भूख तथा प्यास से व्याकुल उसे लगता मानों प्राण बाहर निकल रहे हों।

इसी समय राजकुमारी ने आकाश में उड़ते एक गिद्ध को देखा जो अपनी चोंच में माँस का एक टुकड़ा लिए जा रहा था। राजकुमारी

इतनी अधिक क्षुधित थी कि वह उस टुकड़े को ही पाने की लालसा करने लगी। उसकी यह इच्छा भी उस गिद्ध से छिपी न रह सकी, क्योंकि वह वास्तव में मरुस्थल का प्रेत था। उसने तत्काल अपने पाँव में वह माँस ना टुकड़ा दबा लिया और बोला—"तुझे क्या-चाहिए राजकुमारी ?"

राजकुमारी आश्चर्य में पड़ी, बोली—"मुझे अपनी क्षुधा शान्त करना है गिद्धराज !"

गिद्ध ने तभी अपना रूप बदलकर प्रेत का रूप धारण कर लिया और राजकुमारी के अधिक पास आकर बोला—"लेकिन क्षुधा शान्त होने के बाद क्या तू मेरी हो सकेगी ?"

—"अवश्य; इस तरह मरुस्थल में भूखे और प्यासे तड़पने की अपेक्षा तुम्हारी बनना मुझे कबूल होगा"—राजकुमारी ने अपने सूखे होठों पर जीभ चलाते हुए उत्तर दिया।

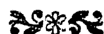
क्रोध से प्रेत तमतमा उठा और अपना सारा शरीर कँपाते हुए बोला—"संसारमें क्या तुझसे भी कोई नीच हो सकता है ? तू पुरुष की आकर्षणकारी दुर्बलता का लाभ उठाकर अपनी विषबुझी देह से उसके भाग्य का विधान लिखना चाहती है। इस सुन्दर वेष में तू साक्षात् सर्पिणी है ! तूने अपने उस पति का उपकार नहीं माना जिसने तेरी प्यास बुझाने के लिए अपने खून को पानी बना दिया। उसकी मृत्यु के बाद तू राक्षस के उपभोग की वस्तु बनकर अपार प्रसन्नता का अनुभव करती रही और अब अवसर पाकर तू मुझे भी अपना शिकार बनाना चाहती है। पर मैं तेरी इन पैशाचिक प्रवृत्तियों की विजय न होने दूँगा। तेरे इन महान् अपराधों का तुझे अभी दंड दिए देता हूँ। तुझे मौत देकर मुक्ति देना अन्याय होगा अतः मैं तेरी इस सुन्दर काया को एक बिकराल जानवर के रूप में बदले देता हूँ ताकि भूखी, प्यासी,

आश्रयहीन तड़पती तू अपने पापों का फल भोगते हर सुनहले प्रभात में अपने उस पति को यादकर पछताती रहे जिसके उपकारों की तूने उपेक्षा की और जिसके भाग्यको तूने पलट दिया।" इतना कहकर प्रेत गायब हो गया और राजकुमारी की जगह एक बिना पूँछ का बन्दर दिखाई दिया।

इस तरह मुनि की कल्पना सत्य हुई और राजकुमार अपने भाग्य के आगे विवश हो सदा के लिए अपने पीछे एक कहानी छोड़ गया। सत्य तो यह है कि वह राजकुमारी एक जंगली बेकार फूल से पैदा हुई थी फिर उसमें कहाँ तक अच्छे गुण आते ? इस कहानी को हुए सैकड़ों वर्ष हो गए परन्तु जब भी उस मरुस्थल और आकाश के बीच रक्त की तरह संध्या का अन्तिम गुलाबी रंग पड़ता है तब उस राजकुमार के निश्छल प्यार के पीछे भाग्य के कठोर विधान की स्मृति गूँज उठती है। उस निर्जन मरुस्थल में आज भी पथिकों को किसी प्रेमी के पश्चाताप भरे स्वर सुनने को मिलते हैं, लगता है कोई अब भी किसी कोई प्रतीक्षा में जलता हुआ रट लगाता रहता है—

"राजकुमार ! राजकुमार ! राजकुमार !"

(एक लोक कथा के आधार पर)



भाषा साहित्य

राजस्थानी भाषा की रूपरेखा	पुरुषोत्तम लाल मेनारिया	१)
भारतीय संस्कृति : वैदिक-धारा	डा० मङ्गलदेव शास्त्री	७)

मनोविज्ञान

आपका शिशु	हेमांगिनी जोशी	३।।)

यातायात

आधुनिक परिवाहन	सुधाकर पाण्डेय	१॥)

हास्यरस

उपहार	बेढब बनारसी	१।।।)
धन्यवाद	,, ,,	२)

उपन्यास

दिगम्बर	शांतिप्रिय द्विवेदी	२)
मुक्तिदान	सिद्धविनायक द्विवेदी	२)
श्वेतपद्मा	,, ,,	१।।)
जीवन संग्राम	नानक सिंह	५)
स्वर्णिम अतीत	अ० मोहन लहरी	३॥)
बालू के टीले	ब्रजेन्द्र खन्ना	५)
माँ	श्रीमती पर्ल एस० बक	२॥)
निशा डूबती है	जयप्रकाश शर्मा	२।।)
राजा रिपुमदन	हर्षनाथ	३)
सीधे-सादे रास्ते	देवीप्रसाद धवन	३।।)

कहानी-संग्रह

चयनिका	कंचनलता सब्बरवाल	२)
मधुकरी खण्ड १	विनोदशंकर व्यास	३)
,, खण्ड २	,, ,,	३)

मकड़ी के जाले	राजेन्द्र अवस्थी	२)
कहानी—मूल और शाखा	सुधाकर पांडेय	२।)

कविता-संग्रह

गीतगुञ्ज	निराला	१॥)
व्याकुल ब्रज	'हरिऔध'	।।।)
नीहारिका	सुधाकर पांडेय	१।)
जो गाता हूँ	,,	१।)
अन्तराल	महेन्द्र भटनागर	१।)

जीवनवृत्त

सम्राट् चन्द्रगुप्त	सत्यनारायण कस्तूरिया	३)
शांतिदूत बापू	सै० कासिमअली	२॥)
संस्मरण और आत्मकथाएँ	धूनीराम त्रिपाठी	१।)

यात्राएँ

अमेरिका में नेहरू	राजकुमार	१।।।)
चीन और नेहरू	,,	१॥)
नेहरू की रूस यात्रा	,,	१ां)

विवेचन

नेहरू और भारतीय राजनीति	प्रमोद एम० ए०	३)
कौल-फैसल	मौलाना 'आजाद'	१ां)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,

पो० बक्स नं० ७० ज्ञानवापी, बनारस।